सूक्त चयन

मुनि ज्ञान

प्रकाशक :
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर–334005
फोन : 2544867

❁ सूक्त चयन

❁ मुनि ज्ञान

❁ अर्थ सौजन्य : श्री सुन्दरलालजी दुगड़, देशनोक (कोलकाता)

❁ प्रथम संस्करण, नवम्बर 2002, 2100 प्रतियां

❁ प्रकाशक :
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, रामपुरिया मार्ग,
बीकानेर – 334005
फोन : 2544867

❁ मूल्य : 20/–

❁ लेजर टाईप सेटिंग
बिट्टू कम्प्यूटर्स, उदयपुर

❁ मुद्रक :
अमित कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिन्टर्स, बीकानेर
दूरभाषः 2547073

समर्पणम्

नाना संयमभावेन, नानातेज प्रकाशकम्।
नाना ज्ञान क्रियायुक्तं, नानानेकान्त वाचकम्।।
नानाध्यात्मसुयोगेन, नाना ज्योति प्रदायकम्।
नानाश्रुतचरित्रेण, नाना कर्म निवारकम् ।।
नाना गणेश पादेन, नाना गुण प्रधारकम्।
नाना सुसाधुमार्गस्य, नाना संघ सुनामकम्।।
नाना नानेशरूपेण, नाना जग प्रकाशकम्।
नाना क्षेत्र विहारेण, नाना भक्तेन पूजितम् ।।
नानागुरोः चिन्तनेन, नाना दुःख निवारकम् ।।
नाना सदुपदेशेन, नाना जीव सुचोदितम् ।
नाना हि व्यसनं त्यक्त्वा, नाना धर्मेण धारितम् ।
नाना चारस्यपालेन, नानाशिष्यैः विराजितम् ।
मुनिना ज्ञानचन्द्रेण, कृत्वा सूक्त चयं मुदा ।
नानेश करयो र्भक्त्या, प्रीतये स्यात्समर्पणम्। ।

मुनि ज्ञान चन्द्रः

29.9.99
पौषधशाला भड़भूजा घाटी
उदयपुरम्

प्रकाशकीय

श्रमण भगवान महावीर ने चतुर्विध संघ के कुशल संचालन का उत्तरदायित्व आचार्य श्री सुधर्मा स्वामी के कंधों पर रखा। सुधर्मा स्वामी ने आचार्य श्री जम्बू स्वामी एवं जम्बू स्वामी ने आचार्य प्रभव स्वामी के कंधों पर रखा। उसके पश्चात् से आचार्य परम्परा निरन्तर गतिमान चली आ रही है।

साधुमार्गी के इस दीर्घकालीन इतिहास में ह्रास और विकास का क्रम चलता रहा है। यह सुखद संयोग रहा है कि ह्रास के विकट काल में भी समर्थ एवं सुयोग्य आचार्यों का पावन सानिध्य इस परम्परा को प्राप्त होता रहा है।

श्रमण परम्परा में लगभग 200 वर्ष पूर्व शिथिलाचार व्यापक रूप से फैलता जा रहा था। शुद्ध साधुत्व के दर्शन दुर्लभ होते जा रहे थे। क्षेत्र, धर्म स्थल एवं शिष्यों के व्यामोह में साधुता भग्न होती जा रही थी। ऐसे युग में आचार्य श्री हुक्मीचन्द जी म.सा. का जन्म हुआ और उन्होंने दीक्षित होकर आगमिक ज्ञान और शुद्ध साधुता के बल पर साधुमार्गी परम्परा को प्राणवान बनाया।

आचार्य श्री हुक्मीचन्द म.सा. के बाद इस परम्परा को पश्चात्वर्ती आचार्यों ने उत्तरोत्तर आगे बढ़ाया। आज हमें परम प्रसन्नता है कि समता विभूति, समीक्षण ध्यान योगी आचार्य श्री नानेश के पट्टधर प्रशान्तमना, व्यसन मुक्ति के प्रेरक, श्री वाल प्रतिबोधक, आचार्य श्री रामलालजी म.सा. के सानिध्य में साधुमार्ग की वह धारा विकसित रूप में उभर कर आ रही है।

आचार्य श्री रामेश के निर्देशन में श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ जिनशासन की सुरक्षा/संवर्धन के लिए कृत: संकल्प है। संघ की शासन उन्नयन की विभिन्न प्रवृत्तियों में सत्साहित्य का प्रकाशन भी एक अहं प्रवृत्ति है। प्रस्तुत कृति **सूक्त चयन** का प्रकाशन उसी ध्येय की पूर्ति है।

प्रस्तुत कृति विद्वद्वर्य ओजस्वी व्याख्याता, संत प्रवर श्री ज्ञानमुनिजी म.सा. के ज्ञान का संदोह है। साधुमार्गी धर्म संघ के अष्टमाचार्य श्री नानेश के अन्तेवासी सुशिष्य श्री ज्ञानमुनिजी ने 13 वर्ष की अल्प आयु में दीक्षित होकर उत्कृष्ट ज्ञान साधना, अथक लगन एवं रचना धर्मिता द्वारा अपने नाम को सार्थकता प्रदान की है। मुनि श्री विद्वान साहित्यकार और सफल प्रवचनकार है। अपनी विद्वता और वक्तृत्वकला से उन्होंने शासन की जो भव्य प्रभावना की है उससे संघ गौरवान्वित है। इतिहास, चिंतन स्मरण, काव्य उपन्यास, कहानी, प्रवचन आदि अनेक विधाओं और विषयों पर आपकी गद्य व पद्य में अनेक कृतियां

प्रकाशित हो चुकी है। जो जैन-समाज में समादृत है। प्रस्तुत कृति के लिए हम मुनि श्री के आभारी हैं। प्रस्तुत कृति सूक्त चयन का प्रकाशन देशनोक निवासी, कोलकाता प्रवासी संघ/शासननिष्ठ सुश्रावक श्री सुन्दरलाल जी दुगड़ के अर्थ सौजन्य से हो रहा है। साहित्य के प्रकाशनार्थ प्रदत्त अर्थ सहयोग हेतु संघ हार्दिक साधुवाद एवं आभार ज्ञापित करता है। प्रकाशन प्रक्रिया में सहयोग हेतु श्री उदय नागोरी धन्यवाद के पात्र हैं। पूरा विश्वास है मुनि श्री की कृति में सन्निहित संदेश आत्मसात कर पाठक अंतरावलोकन करने में समर्थ होंगे और जीवन को सम्यक् दिशा में अग्रसर करेंगे।

निवेदक

शान्तिलाल सांड

संयोजक

साहित्य प्रकाशन समिति

श्री अ.भा.सा. जैन संघ, समता भवन, बीकानेर

प्रस्तुत पुस्तक में विभिन्न नीतियों, सूक्तियों का संकलन किया गया है। मुनि श्री की ओर से संयमीय मर्यादाओं को ध्यान में रखते हुए ही संकलन किया गया है लेकिन कुछ सूक्तियों का संकलन समाजोपयोगी समझकर संयोजक की ओर से स्वतंत्र रूप से किया गया है।

- संयोजक, साहित्य प्रकाशन समिति

अर्थ सहयोगी
शासन समर्पित दुगड़ परिवार

देशनोक निवासी श्री मोतीलाल जी दुगड़ आचार्य श्री हुक्मीचन्द जी म.सा. एवं श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर के स्थापना काल से ही एकनिष्ठ सुश्रावक रहे हैं, जिन्होंने संघ/शासन की चहुंमुखी प्रगति में अहम् भूमिका का निर्वहन किया है। श्रीमद् जवाहराचार्य, श्री गणेशाचार्य, श्री नानेशाचार्य एवं आचार्य श्री रामेश के श्रद्धालु, आस्थावान एवं समर्पित भक्तों में श्री दुगड़ जी का परिवार अग्रणी व प्रमुख है। शासननिष्ठ, अनन्य गुरुभक्त, संघ समर्पित श्री मोतीलाल जी दुगड़ के ज्येष्ठ पुत्र श्री सुन्दरलाल जी दुगड़ हैं, जिनका संघ एवं समाज के कर्मठ कार्यकर्त्ताओं में महत्वपूर्ण व विशिष्ट स्थान है।

श्री सुन्दरलाल जी दुगड़ जैन समाज के उन युवा उद्योगपतियों में प्रमुख व अग्रपंक्तया है, जिन्होंने विगत सार्द्धदशक में अपने अथक परिश्रम, कौशल, प्रतिभा तथा औदार्य से न केवल औद्योगिक जगत् में अपनी पृथक् पहचान बनाई है, अपितु अपनी धर्मनिष्ठता, सदाचारिता, सदाशयता, सच्चरित्रता एवं जनहितैषिता से शिक्षा और सेवा के क्षेत्र में भी श्लाघनीय, स्तुत्य व अनुकरणीय आदर्श भी स्थापित किया है।

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ के पूर्व उपाध्यक्ष रहे श्री सुन्दरलाल जी दुगड़ सम्प्रति अनेक सामाजिक, शैक्षणिक, धार्मिक तथा जन कल्याणकारी संस्थानों से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं तथा ट्रस्टी, मंत्री, अध्यक्ष आदि पदों पर रहते हुए बहुआयामी सेवा कार्यों में संलग्न है। आपने भवन निर्माण का कार्यारम्भ कर व्यावसायिक जगत में प्रवेश किया तथा आर.डी. बिल्डर्स एण्ड डेवलपर्स की स्थापना की और अपनी दूरदर्शिता, कार्यकुशलता, त्वरित निर्णय क्षमता तथा प्रतिभा के बल पर आज भवन निर्माण सहित विभिन्न व्यवसायों का सुसंचालन कर रहे हैं। आर.डी. बिल्डर्स एण्ड डेवलपर्स नामक इनका प्रतिष्ठान आर.डी.बी. इन्डस्ट्रीज में परिवर्तित होकर औद्योगिक क्षेत्र में सुस्थापित, प्रतिष्ठित हो इनके गतिशील, चुम्बकीय, सफल व्यक्तित्व की कथा कह रही है।

समय की धारा एवं नब्ज पहचान कर साफल्य के सौपान हस्तगत करने वाले श्री दुगड़ प्रगतिशील विचारों के धनी हैं और युवा उद्योग रत्न रूप में सम्मानित व समादृत हैं। 'दिया दूर नहीं जात' कथन का अनुसरण कर आपने अपनी जन्मभूमि देशनोक (राजस्थान) में अनेक संस्थानों के उत्थान एवं विकास में प्रमुख भूमिका का निर्वहन किया है। आपके प्रभूत अनुदान से कपासन

(उदयपुर) में आचार्य नानेश रूप रेखा रामेश गौशाला की स्थापना हुई है तथा पी.बी.एम. हास्पिटल, बीकानेर में वार्ड संरक्षण का सेवा सांस्थानिक कार्य प्रगति पर है।

सरलता, सहजता, मिलनसारिता, विनम्रता एवं मधुस्मिता गुणों से समन्वित श्री सुन्दरलालजी दुगड़ का व्यक्तित्व प्रदर्शन, आडम्बर एवं विज्ञापन से सर्वथा दूर सादगी, सेवा तथा उदारता का प्रतीक है। कोलकात्ता के जैन अजैन समाज में आपको अत्यन्त लोकप्रियता प्राप्त है। अनेक राजनेताओं एवं अति विशिष्ट महानुभावों से घनिष्ठ सम्बन्ध होने पर भी ये एक निरभिमानी, निष्काम, निस्वार्थ कर्मठ कार्यकर्त्ता के रूप में जाने पहचाने जाते हैं। कोलकात्ता एवं देशनोक का धर्म और सेवा क्षेत्रीय ऐसा कोई संस्थान तथा संगठन नहीं है जो इनके उदार सहयोग एवं सक्रिय व्यक्तित्व से लाभान्वित नहीं होता हो।

आपके सुपुत्र श्री विनोद जी दुगड़ भी अपने धर्म-कर्त्तव्यनिष्ठ पितृ के पदचिह्नों पर चलकर समाज की सेवा में अग्रणी एवं उत्साहित रहते हैं।

ऐसे शासन समर्पित परिवार से संघ गौरवान्वित है। सत् साहित्य के प्रकाशन हेतु प्रदत्त आर्थिक सहयोग इस परिवार की प्रशस्त एवं प्रगाढ़ धर्मभावना का प्रतीक है। एतदर्थ संघ का आभार व साधुवाद।

उदय नागोरी
सदस्य, साहित्य प्रकाशन समिति

अकाराद्यनुक्रमणिका

क्र.सं.	श्लोक	छन्द	श्लोक सं.
1.	अजातमृतमूर्खाणां परमाद्यौ न चान्तिमः । सकृद् दुःखकरावाद्यावन्तिमस्तु पदे पदे ।।	अनुष्टुप्	6
2.	अनिष्टादिष्टलाभेऽपि न गतिर्जायते शुभा । यत्रास्ते विषसंसर्गोऽमृतं तदपि मृत्यवे ।।	अनुष्टुप्	24
3.	असंम्भवं हेम मृगस्य जन्म, तथापि रामो लुलुभेमृगाय। प्रायः समापन्न विपत्तिकाले धियोऽपि पुंसां मलिना भवन्ति।।	उपेन्द्रवज्रा	35
4.	अल्पानामपि वस्तूनां संहतिः कार्यसाधिका । तृणैर्गुणत्वमापन्नैर्वध्यन्ते मत्तदन्तिनः ।।	अनुष्टुप्	38
5.	अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते । स तस्मै दुष्कृतं दत्वा पुण्यमादाय गच्छति।।	अनुष्टुप्	45
6.	अयं निजः परो वेति गणनालघुचेतसाम् । उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।।	अनुष्टुप्	46
7.	अन्यथैव हि सौहार्दं भवेत् स्वच्छान्तरात्मनः । प्रवर्ततेऽन्यथा वाणी शाठ्योपहतचेतसः ।।	अनुष्टुप्	62
8.	अदृष्टदानं कृत पूर्वनाशनममाननं दुश्चरितानुकीर्तनम् । कथा प्रसंगेन च नाम विस्मृतिर्विरक्तभावस्य जनस्य लक्षणम्।।	उपजाति	72
9.	अपुत्रस्य गृहं शून्यं सन्मित्ररहितस्य च । मूर्खस्य च दिशः शून्याः सर्वशून्या दरिद्रता ।।	अनुष्टुप्	74
10.	अर्थनाशं मनस्तापं गृहेदुश्चरितानिच । वंचनं चापमानं च मतिमान् न प्रकाशयेत् ।।	अनुष्टुप्	186

क्र.सं.	श्लोक	छन्द	श्लोक सं.
11.	अर्था: पादरजोपमाः गिरिणदी वेगोपमं यौवनम् । आयुष्यं जलविन्दु लोल चपलं फेनोपमं जीवनम् । धर्मं यो न करोति निश्चलमतिः स्वर्गाऽर्गलोद्घाटनम् । पश्चात्ताप हतो जरापरिणतः शोकाग्निना दह्यते ।।	शार्दूलविक्रीडितम्	82
12.	अलक्तको यथा रक्तो निष्पीड्य पुरूषस्तथा । अबलाभिर्बलाद् रक्तः पादमूले निपात्यते ।।	अनुष्टुप्	96
13.	अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः । नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्म संग्रहः ।।	अनुष्टुप्	103
14.	अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः । ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि तं नरं न रंजयति ।।		108
15.	अकरूणत्वमकारण विग्रह : परधने परयोषिति च स्पृहा । सुजनबन्धुजनेष्वसहिष्णुता प्रकृति सिद्धमिदं हि दुरात्मनाम् ।।	उपजाति	134
16.	अनित्यं यौवनं रूपं जीवितं द्रव्य संचयः । ऐश्वर्य प्रिय संवासो मुह्येत् तत्र न पंडितः । कायः सन्निहितापायः सम्पदः पदमापदाम् । समागमाः सापगमाः सर्वमुत्पादि भंगुरम् ।।	अनुष्टुप्	152
17.	असती भवति सलज्जा क्षारं नीर च शीतलं भवति । दम्भी भवति विवेकी प्रियवक्ता भवति धूर्तजनः ।।		156
18.	अनवरत परोपकार व्यग्रीभवदमल चेतसां महताम् । आपातकाटवानि स्फुरन्ति वचनानि भेषजानीव ।।		157
19.	अभ्रच्छाया खलप्रीतिः सिद्धमन्न च योषितः । किंचित् कालोपभोग्यानि यौवनानि धनानि च ।।	अनुष्टुप्	160
).	अपमानं पुरस्कृत्य मानं कृत्वा च पृष्टतः । स्वार्थ–मभ्युद्धरेत् प्राज्ञः स्वार्ध–भ्रंशो हि मूर्खता ।।	अनुष्टुप्	169

क्र.सं.	श्लोक	छन्द	श्लोक सं.
21.	अकृत्यं नैव कर्तव्यं प्राणत्यागेऽपि संस्थिते । न च कृत्यं परित्याज्यः धर्म एष पुरातनः ।।	अनुष्टुप्	174
22.	अरक्षितं तिष्ठति देव रक्षितं सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति। जीवत्यनाथेऽपि वने विसर्जितः कृत प्रयत्नोऽपि गृहेन जीवति।।	उपजाति	190
23.	अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् । नाभुक्ते क्षीयते कर्म कल्प कोटि शतैरपि ।।	अनुष्टुप्	198
24.	अप्रियवचनदरिद्रैः प्रिय वचनाढ्यैः स्वदारपरितुष्टै । परिपरिवाद निवृत्तैः क्वचित्क्वचित् मण्डिता वसुधा ।।		203
25.	अभिवादनशीलस्य नित्यं बृद्धोपसेविनः । चत्वारि तस्य बर्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम् ।।	अनुष्टुप्	145
26.	अनभ्यासे विषं विद्या , चाजीर्णे भोजनं विषम् । विषं सभा दरिद्रस्य बृद्धस्य तरूणी विषभ् ।।	अनुष्टुप्	10
27.	आपदर्थेधनं रक्षेत् दारान् रक्षेत् धनैरपि । आत्मानं सततं रक्षेत् दारैरपि धनैरपि ।।	अनुष्टुप्	40
28.	आपत्सु मित्रं जानीयात् युद्धेशूरमृणे शुचिम् । भार्यां क्षीणेषु वित्तेषु व्यसनेषु च बान्धवान् ।।	अनुष्टुप्	49
29.	आमरणान्ताः प्रणयाः कोपास्तत् क्षणभंगुराः । परित्यागाश्च निःसंगाः भवन्ति हि महात्मनाम् ।।	अनुष्टुप्	91
30.	आस्तां तावत् किमन्येन दौरात्म्येनेह योषिताम् । विधृतं सोदरेणापि ध्नन्ति पुत्रं स्वकं रूषा ।।	अनुष्टुप्	97
31.	आहार निद्रा भय मैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम् । धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेणहीनाः पशुभिः समानाः ।।	उपजाति	110
32.	आरम्भगुर्वीक्षयिणी क्रमेण लध्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात् । दिनस्य पूर्वार्धपरार्धभिन्ना छायेव मैत्री खलसज्जनानाम् ।।	उपजाति	142

क्र.सं.	श्लोक	छन्द	श्लोक सं.
33.	आपत् काले तु सम्प्राप्ते यन्मित्रं मित्रमेव तत् । बृद्धि काले तु सम्प्राप्ते दुर्जनोऽपि सुहृद भवेत् ।।	अनुष्टुप्	161
34.	आत्मापराधवृक्षस्य फलान्येतानि देहिनाम् । दारिद्ररोग दुःखानि बन्धन व्यसनानि च ।।	अनुष्टुप्	178
35.	आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः । नास्त्युद्यम समो बन्धुः यः कृत्वा नावसीदति ।।	अनुष्टुप्	180
36.	आलस्यं स्त्री सेवा सरोगता जन्मभूमिवात्सल्यम् । संतोषो भीरूत्वं षड् व्याघाताः महत्वस्य ।।		184
37.	आकाशमुत्पततु गच्छतु वा दिगन्तम् । अम्भोनिधिर्विशतु तिष्ठतु वा यथेच्छम् । जन्मान्तरार्जित शुभाशुभ कृन्नराणाम् । छायेव न त्यजति कर्म फलानुवन्धः ।।	वसन्त तिलका	196
38.	ईर्ष्यी घृणी त्वसन्तुष्टः क्रोधनो नित्यशंकितः । परभाग्योपजीवी च षडेते दुःखभागिनः ।।	अनुष्टुप्	33
39.	ईक्षोरग्रात् क्रमशः पर्वणि यथा रसो विशेषः । तद्वत् सज्जन मैत्री विपरीतानां तु विपरीता ।।		143
40.	उद्योगिनं पुरूषसिंहमुपैति लक्ष्मीः दैवेनदेयमिति का पुरूषा वदन्ति। दैवंनिहत्यकुरूषौरूषमात्मशक्त्या यत्नेकृते यदि न सिद्धयति कोत्रदोषः।।	बसन्त तिलका	13
41.	उद्यमेन हि सिद्धयन्ति कार्याणि न मनोरथैः । नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखेमृगाः ।।	अनुष्टुप्	16
42.	उत्सवे व्यसने चैव दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे । राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः ।।	अनुष्टुप्	50

क्र.सं.	श्लोक	छन्द	श्लोक सं.
43.	उत्साहसम्पन्नमदीर्घसूत्रं क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम्। शूरं कृतज्ञं दृढ़ सौहृद चलक्ष्मीः स्वयं याति निवासहेतोः ।	उपेन्द्रवज्रा	89
44.	उद्भासिताखिलखलस्य विश्रृंखलस्य । प्राग् जात विस्तृत निजाधम कर्मवृत्तेः ।। दैवादवाप्त विभवस्य गुणद्विषोऽस्य । नीचस्यगोचरगतैः सुखमास्यते कैः ।।	बसन्त तिलका	141
45.	ऋणकर्ता पिता शत्रुः माता च व्यभिचारिणी । भार्या रूपवती शत्रुः पुत्रः शत्रुरपण्डितः ।।	अनुष्टुप्	210
46.	एकस्य दुःखस्य न यावदन्तं गच्छाम्यहं पारमिवार्णवस्य । तावद् द्वितीयं समुपस्थितं में छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति।।	उपेन्द्रवज्रा	94
47.	एकेन शुष्क वृक्षेण दह्यमानेन वह्निना । दह्यते तद् वनं सर्वं कुपुत्रेण कुलं यथा ।	अनुष्टुप्	126
48.	एके सत्पुरूषाः परार्थघटकाः स्वार्थं परित्यज्य ये । सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधेन ये । तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये। ये निघ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे ।।		162
49.	एकेनापि हि शूरेण पादाक्रान्तं महीतलम् । क्रियते भास्करेणैव परिस्फुरित तेजसा ।।	अनुष्टुप्	212
50.	ऐश्वर्यस्य विभूषणं सुजनता शौर्यस्य वाक्संयमो । ज्ञानस्यापशमः श्रुतस्य विनयो वित्तस्य पात्रे व्ययः ।		170
51.	औरसं कृतसम्बन्धं तथा वंशक्रमाऽऽगतम्। रक्षकं व्यसनेभ्यश्च मित्रं ज्ञेयं चतुर्विधम्।।	अनुष्टुप्	92
52.	कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान् न धार्मिकः । काणेन चक्षुषा किं वा चक्षुः पीड़ैव केवलम् ।।	अनुष्टुप्	5

क्र.सं.	श्लोक	छन्द	श्लोक सं.
53.	काकतालीयवत्प्राप्तं दृष्ट्वाऽपि निधिमग्रतः । न स्वयं दैवमादत्ते पुरूषार्थमपेक्षते ।।	अनुष्टुप्	15
54.	काचः का चन–संसर्गात् धत्ते मारकतीर्द्युतीः । तथा सत्सन्निधानेन मूर्खो याति प्रवीणताम् ।।	अनुष्टुप्	20
55.	को वीरस्य मनस्विनः स्व विषयः,को वा विदेशः स्मृतः। यं देशं श्रयते तमेव कुरूते, वाहु प्रतापार्जितम् ।।		70
56.	को धर्मो ?भूतदया, कि सौख्यं ?नित्यमरोगिता जगति। कः स्नेहः ? सद्भावः किं पाण्डित्यं ? परिच्छेद :।।		80
57.	कुलाचार जनाचारैरतिशुद्धः प्रतापवान् । धार्मिको नीति कुशलः स स्वामी युज्यतेभुवि ।।	अनुष्टुप्	93
58.	काके शौचं द्यूतकारे च सत्यं सर्पे क्षान्तिः स्त्रीषु कामोपशान्ति। क्लीवे धैर्यं मद्यपे तत्वचिन्ता राजा मित्रं केन दृष्टं श्रुतं वा ।।	उपेन्द्रवज्रा	107
59.	कृमिकुल चित्तं लालाल्किन्नं विगर्हिजुगुप्सितम् । निरूपमरसं प्रीत्या खादन् नरास्थि निरामिषम् । सुरपतिमपि श्वा पार्श्वस्थं विलोक्य न शंकते । नहि गणयति क्षुद्रो जन्तुः परिग्रह फल्गुताम् ।।		111
60.	काव्यशास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम् । व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन च ।।	अनुष्टुप्	112
61.	केयूराः न विभूषयन्ति पुरूषं हाराः न चन्द्रोज्ज्वलाः। न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालंकृताः मूर्धजाः । वाण्येका समलंकरोति पुरूषं या संस्कृता धार्यते । क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम् ।।		118

क्र.सं.	श्लोक	छन्द	श्लोक सं.
62.	करे श्लाध्यः त्यागः शिरसि गुरूपादप्रणयिता । मुखे सत्या वाणी विजयि भुजयोर्वीर्यमतुलम् । हृदि स्वस्था वृत्तिः श्रुतमधिगतैक व्रत फलम् । विनाप्यैश्वर्येण प्रकृति महतां मण्डनमिदम् ।।		148
63.	किं भूषणाद् भूषणमस्ति शीलम् । तीर्थं परं किं स्वमनो विशुद्धिः। किमत्र हेयं कनकं च कान्ता । श्राव्यं सदा किं गुरूदेव वाक्यम् ।।	उपेन्द्रवज्रा	175
64.	को वा दरिद्रो हि विशालतृष्णा श्रीमांश्च को यस्य समस्ततोषः। जीवन्मृतः कस्तु निरूद्यमो यः को वाऽमृतस्स्यात् सुखदा निराशा।।	उपेन्द्रवज्रा	181
65.	को लाभो गुण संगमः किमसुखं प्राज्ञेतरैः सैं.तिः । का हानिः समयच्युतिर्निपुणता का धर्मतत्वे रतिः ।		200
66.	किं दुर्लभः सद् गुरूरस्ति लोके । सत् संगतिः ब्रह्मविचारणा च । त्यागो हि सर्वस्य शिवात्मबोधः । को दुर्जयः सर्वजनैः मनोजः ।।	उपेन्द्रवज्रा	200
67.	कोऽतिभारः समर्थानां किं दूरं व्यवसायिनाम् । को विदेशः सविद्यानां कः परः प्रियवादिनाम्।।	अनुष्टुप्	204
68.	कदर्थितस्यापि हि धैर्यवृत्तेः । न शक्यते धैर्यगुणः प्रमार्ष्टुम्। अधोमुखस्यापि कृतस्य वह्नेः। नाधः शिरवा याति कदाचिदेव।।	उपेन्द्रवज्रा	206

क्र.सं.	श्लोक	छन्द	श्लोक सं.
69.	क्रोधो हि शत्रुः प्रथमो नराणां देहस्थितो देहविनाशनाय । यथा स्थितः काष्ठगतो हि वह्निः स एव वह्निर्दहते च काष्ठम्।।	उपेन्द्रवज्रा	208
70.	गुणा गुणज्ञेषु गुणा भवन्ति ते निर्गुणं प्राप्य भवन्ति दोषाः। आस्वाद्यतोयाः प्रवहन्ति नद्यः समुद्रमासाद्य भवन्त्यपेयाः।।	उपेन्द्रवज्रा	22
71.	गुणवदगुणवद् वा कुर्वता कार्यमादौ । परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन । अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्ते :। भवति हृदय दाही शल्यतुल्यो विपाकः।।		194
72.	गुरूरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरूः । स्त्रीणां पतिः गुरूर्ख्यातः, सर्वेषामतिथिः गुरूः।।	अनुष्टुप्	76
73.	घर्मार्तं न तथा सुशीतलजलैः स्नानं न मुक्तावली । न श्रीखण्डविलेपनं सुखयति प्रत्यै.मप्यर्पितम् । प्रीत्यै सज्जनभाषितं प्रभवति प्रायोयथा चेतसः । सद् युक्त्या च परिष्कृतं सुकृतिनामाकृष्टिमन्त्रोपमम् ।		60
74.	घातयितुमेव नीचः परकार्यं वेत्ति न प्रसाधयितुम् । पातयितुमस्ति शक्तिः वायोः न चोन्नमितुम् ।।	अनुष्टृप्	163
75.	चलत्येकेन पादेन तिष्ठत्येकेन बुद्धिमान् । नाऽसमीक्ष्य परं स्थानं पूर्वमायतनं त्यजेत् ।।	अनुष्टुप्	66
76.	चला लक्ष्मीश्चलाः प्राणाश्चले जीवितमन्दिरे । चलाचले च संसारे धर्म एको हि निश्चलः ।।	अनुष्टुप्	104
77.	चलन्ति गिरयः कामं युगान्तपवनाहताः । कृच्छ्रेऽपि न चलत्येव धीराणां निश्चलं मनः ।	अनुष्टुप्	173

क्र.सं.	श्लोक	छन्द	श्लोक सं.
78.	चत्वारो धन दायादाः धर्माग्निनृपतस्कराः। ज्येष्ठस्य त्वपमानेन त्रयो कुप्यन्ति बान्धवाः।।	अनुष्टुप्	197
79.	चेतोहराः युवतयः स्वजनोऽनुकूलः । तद् बान्धवाः प्रणयगर्वगिरश्चभृत्याः । गर्जन्ति दन्तिनिवहास्तरलाः तुरंगाः। संमीलने नयनयोः नहि किंचिदस्ति ।।	बसन्त तिलका	183
80.	चपलता बहुचंचलता तथा, शंकिता बहुभोजनता ननु। रोषदोषसदावनितासु वै, एतदेव गुणाः हयरत्नसु ।।	उपेन्द्रवज्रा	185
81.	जाड्यं ह्रींमति गण्यते व्रतरूचौ दम्भः शुचौ कैतवं । शूरे निर्घृणता मुनौ विमतिता दैन्यं प्रियालापिनी । तेजस्विन्यवलिप्ता मुखरता वक्तर्यशक्तिः स्थिरे । तत्को नाम गुणी भवेत्स गुणिनां यो दुर्जनैःनांकितः।।		137
82.	जीर्य्यन्ते जीर्य्यतः केशाः दन्ताः जीर्य्यन्ति जीर्य्यतः । जीर्य्यतश्चक्षुषी श्रोत्रे तृष्णैका तरूणायते । इच्छति शती सहस्रं सहस्त्री लक्षमीहते । लक्षाधिपस्तथा राज्यं राज्यस्थः स्वर्गमीहते।।	अनुष्टुप्	166
83.	जीवन्तु में शत्रुगणाः सदैव । येषां प्रसादात् सुविचक्षणोऽहम्। ये ये च मां वै प्रति बाधयन्ति। ते ते च मां हि प्रतिबोधयन्ति।।	इन्द्रवज्रा	186
84.	तृणानि भूमिरूदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता । एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन।।	अनुष्टुप्	43
85.	तानीन्द्रियाण्यविकलानि तदेव नाम, सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव । अर्थोष्मणा विरहितः पुरूष : स एव, ह्यन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत्।।	बसन्त तिलका	75

क्र.सं.	श्लोक	छन्द	श्लोक सं
86.	त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्। ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्।।	अनुष्टुप्	81
87.	त्यज दुर्जन संसर्ग भज साधु समागमम् । कुरू पुण्यमहोरात्रं स्मर नित्यमनित्यताम् ।।	अनुष्टुप्	116
88.	तृष्णां छिन्धि भजक्षमां जहि मदं पापे रतिं मा कृथाः। सत्यं ब्रूह्यनुयाहि साधुपदवीं सेवस्व विद्वज्जनम् । मान्यान्मानय विद्विषोप्यनुनय प्रख्यापय स्वान्गुणान्। कीर्तिं पालय दुःखिते कुरू दयामेतत्सतां लक्षणम्।।		164
89.	दीपनिर्वाणगन्धञ्च सुहृद वाक्यमरून्धतीम् । न जिघ्रन्ति न श्रृण्वन्ति न पश्यन्ति गतायुष :।।	अनुष्टुप्	51
90.	दुर्जनेन समं सख्यं वैर चापि न कारयेत् । उष्णो दहति चांगारः शीतः कृष्णायते करम् ।।	अनुष्टुप्	53
91.	दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययाऽलृतोऽपि (वा) सन्। मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयंकरः ।।		57
92.	द्रवत्वात् सर्वलोहानां निमित्तात् मृगपक्षिणाम् । भयाल्लोभाच्च मूर्खाणां संगतं दर्शनात् सताम् ।।	अनुष्टुप्	58
93.	दानं प्रियवाक्सहितं ज्ञानमगर्व क्षमान्वितं शौर्यम् । त्यागसहितं च्र वित्तं दुर्लभमेतच्चतुर्भद्रम् ।।		85
94.	दाने तपसि शौर्ये च यस्य न प्रस्थितं यशः । विद्यायामर्थ लाभे च मातुरूच्चार एव सः ।।	अनुष्टुप्	114
95.	दाक्षिण्यं स्वजने दया परजने शाठ्यं सदा दुर्जने। प्रीतिः साधु जने नयो नृप जने विद्वज्जने चार्जवम्। शौर्यं शत्रुजने क्षमा गुरूजने नारीजने धूर्तता । ये चैवं पुरूषाः कलासु कुशलाः तेष्वेव लोकस्थितिः।		120

क्र.सं.	श्लोक	छन्द	श्लोक सं.
96.	दौर्मन्त्र्यान्नृपतिः विनश्यति यतिः संगात्सुतो लालनात् । विप्रोनध्ययनात् कुलं कुतनयात् शीलं खलोपासनात् । ह्रीर्मद्यात् अनवेक्षणादपि कृषिः स्नेहः प्रवासाश्रयात् । मैत्री चाप्रणयात् समृद्धिरनयात्त्यागात्प्रमादात्धनम् ।।		124
97.	दानं भोगो नाशः तिस्त्रो गतयो भवन्ति धनस्य । यो न ददाति न मुंक्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ।	अनुष्टुप्	127
98.	धनिकः श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यस्तु पंचमः । पंच यत्र न विद्यन्ते तत्र वासं न कारयेत् ।।	अनुष्टुप्	68
99.	धनलुब्धो ह्यसन्तुष्टोऽनियतात्माऽजितेन्द्रिय : । सर्वा एवापदस्तस्य यस्य तुष्टं न मानसम् ।।	अनुष्टुप्	79
100	धनेन किं ? यो न ददाति नाऽश्नुते। बलेन किं ? यश्च रिपून् न बाधते। श्रुतेन किं ? यो न च धर्ममाचरेत् । किमात्मना ? यो न जितेन्द्रियो भवेत्।।	उपजाति	83
101	धनं तावदसुलभं लब्धं कृच्छ्रेण पाल्यते । लब्धनाशो यथा मृत्युः तस्मादेतन्न चिन्तयेत्।।	अनुष्टुप्	90
102	धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यै कोऽपि न विद्यते । अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम्।।	अनुष्टुप्	115
103	धनानि जीवितं चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत् । सन्निमित्ते वरं त्यागो विनाशे नियते सति ।।	अनुष्टुप्	154
104	न दैवमपि स चत्य त्यजेदुद्योगमात्मन : । अनुद्योगेन तैलानि तिलेभ्यो नाप्तुमर्हति ।।	अनुष्टुप्	12
105.	न दुर्जनः साधुदशामुपैति बहु प्रकारैरपि शिक्ष्यमाणः आमूलसिक्तः पयसाघृतेन न निम्ब वृक्षो मधुरत्वमेति।।	उपजाति	23

क्र.सं.	श्लोक	छन्द	श्लोक सं.
106.	नदीनां शस्त्रपाणीनां, नखिनां श्रृं.णीां तथा । विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीणु राजकुलेषु च।।	अनुष्टुप्	28
107.	निर्गुणेस्वपि सत्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः । नहि संहरते ज्योत्स्नां चन्द्रश्चाण्डालवेश्मनः।।	अनुष्टुप्	44
108.	न कश्चित् कस्यचिन्मित्रं न कश्चित् कस्यचित् रिपुः। व्यवहारेण मित्राणि जायन्ते रिपवस्तथा ।।	अनुष्टुप्	48
109.	न देवाय न विप्राय न बन्धुभ्यो न चात्मने । कृपणस्य धनं याति वह्नितस्कर पार्थिवै :।।	अनुष्टुप	84
110.	नाप्राप्यमभिवांछन्ति नष्टं नेच्छन्ति शोचितुम् । आपत्स्वपि न मुहयन्ति नराः पण्डितबुद्धयः।।	अनुष्टुप्	86
111.	नृपस्य चित्तं कृपणस्य वित्तं मनोरथं दुर्जनमानवानाम् । स्त्रियश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवो न जानाति कुतो मनुष्यः ।।	उपजाति	98
112.	न जात्या ब्राह्मणश्चात्र क्षत्रियो वैश्य एव च । न शूद्रो न च वै म्लेच्छो भेदिता गुण कर्ममिः ।	अनुष्टुप्	125
113.	न राम सदृशो राजा पृथिव्यां नीतिमानभूत् । न कूटनीति तत्वज्ञः श्री कृष्णसदृशो नृपः ।	अनुष्टुप्	130
114.	नहि भवति यन्न भाव्यं भवति च भाव्यं विनापि यत्नेन । करतल गतमपि नश्यति यस्य तु भवितव्यता नास्ति ।।	उपजाति	133
115.	नम्रत्वेनोन्नमन्तः परगुणकथनैः स्वान्‌गुणान् ख्यापयन्तः। स्वार्थान्सम्पादयन्तो वितत प्रियतरारम्भयत्नाः परार्थे ।		150
116.	निन्दन्तु नीति–निपुणा यदि वा स्तुवन्तु । लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् । अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा । न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ।।	बसन्त तिलका	171

क्र.सं.	श्लोक	छन्द	श्लोक सं.
117.	नैवाकृतिः फलति नैव कुलं न शीलं । विद्याऽपि नैव न च यत्नकृतापि सेवा। भाग्यानि पूर्वतपसा खलु सञ्चितानि । काले फलन्ति पुरुषस्य यथैव वृक्षाः।।	बसन्त तिलका	188
118.	निमग्नस्य पयोराशौ पर्वतात् पतितस्य च। तक्षकेनापि दंष्टस्य त्वायुर्मर्माणि रक्षति।।	अनुष्टुप्	191
119.	पुस्तकेषु च नाऽधीतं नाऽधीतं गुरूसन्निधौ । न शोभते सभा मध्ये जारगर्भ इव स्त्रिया :।।	अनुष्टुप्	19
120.	प्राणायथात्मनोऽभीष्टा भूतानामपि ते तथा । आत्मौपम्येन भूतानां दयां कुर्वन्ति साधव :।।	अनुष्टुप्	25
121.	प्राक् पादयोः पतति खादति पृष्टमांसं । कर्णे कलं किमपि रौति शनैर्विचित्रम् ।। छिद्रं निरूप्य सहसा प्रविशत्यशः । सर्वं खलस्य चरितं मशकः करोति।।	बसन्त तिलका	54
122.	प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचै : । प्रारभ्य विघ्नविहिता विरमन्ति मध्याः । विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः । प्रारभ्यचोत्तम जना न परित्यजन्ति ।।	बसन्त तिलका	122
123.	प्रदानं प्रच्छन्नं गृहमुपगते सम्भ्रमविधिः । प्रियं कृत्वा मौनं सदसि कथनं चात्युपकृतेः । अनुत्सेको लक्ष्म्यां निरभिभवसाराः परकथाः । सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम् ।।		146
124.	परपरिवादः परिषदि न कथञ्चित् पण्डितेन वक्तव्यः। सत्यमपि तन्न वाच्यं यदुक्तमसुखावहं भवति ।		147

क्र.सं.	श्लोक	छन्द	श्लोक सं.
125.	पापान्निवारयति योजयते हिताय । गूह्यं च गूहति गुणान् प्रकटीकरोति। आपद्गतं च न जहाति ददाति काले । सन् मित्र लक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः ।।	वसन्त तिलका	155
126.	परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् । वर्जयेत् तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम्।	अनुष्टुप्	159
127.	पतितोऽपि कराघातैः उत्पतत्येव कन्दुकः । प्रायेण साधुवृत्तानाम् अस्थायिन्यो विपत्तयः ।।	अनुष्टुप्	179
128.	पंकैर्बिना सरो भाति सभा खलजनैर्विना । कटुवर्णैर्बिना काव्यं मानसं विषयैर्विना।।	अनुष्टुप्	211
129.	बद्धो हि को यो विषयानुरागी । को वा विमुक्तिः विषये विरक्तिः । को वास्ति घोरो नरकस्स्वदेहः । तृष्णाक्षयः स्वर्गपदं किमस्ति ।।	इन्द्रवज्रा	165
130.	भोगे रोग भयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयम् । मौने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जरायाः भयम् । शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयम् । सर्वं वस्तु भयान्वितं भुविनृणां वैराग्यमेवाभयम् ।।		106
131.	भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैः । नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः । अनुद्धताः सत्पुरूषाः समृद्धिभिः । स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ।।	उपजाति	151
132.	भग्नाशस्य करण्डपीडिततनोर्म्लानेन्द्रियस्य क्षुधा । कृत्वाखुर्विवरं स्वयं निपतितो नक्तं सुखे भोगिनः। तृप्तस्तत्पिशितेन सत्वरमसौ तेनैव यातः पथा । लोकोः पश्यत दैवमेव हि नृणां वृद्धौ क्षये कारणम्।।		176

क्र.सं.	श्लोक	छन्द	श्लोक सं.
133.	भवतीष्टं सत्क्रियययाऽनिष्टं तद्विपरीतया । शास्त्रतः सदसद् ज्ञात्वा त्यक्त्वाऽसत् सत्समाचरेत् ।।	अनुष्टुप्	192
134.	भीमं वनं भवति तस्य पुरं प्रधानं । सर्वो जनः सुजनतामुपयाति तस्य। कृत्स्ना च भूर्भवति सन्निधिरत्नपूर्णा । यस्यास्ति पूर्वसुकृतं विपुलं नरस्य।।	बसन्त तिलका	199
135.	माता शत्रु : पिता वैरी येन बालो न पाठित : । न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा ।।	अनुष्टुप्	17
136.	मरूस्थल्यां यथा वृष्टिः क्षुधार्त्ते भोजनं तथा । दरिद्रे दीयते दानं सफलं पाण्डुनन्दन ।।	अनुष्टुप्	26
137.	मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत् । आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः ।	अनुष्टुप्	27
138.	मार्जारो महिषो मेषः काकः कापुरूषस्तथा । विश्वासात् प्रभवन्त्येते विश्वासस्तत्र नो हितः।।	अनुष्टुप्	55
139.	मनस्यन्यद् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम् । मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् ।।	अनुष्टुप्	63
140.	मुखं प्रसन्नं विमला च दृष्टिः कथाऽनुरागो मधुरा च वाणी । स्नेहोऽधिकः सम्भ्रमदर्शनं च सदानुरक्तस्य जनस्य लक्ष्म ।।	उपेन्द्रवज्रा	71
141.	मांस च द्यूतं च सुरां च वेश्यां, पापर्धिचोरी परदारसेवाम् । एतानि सप्त व्यसनानि लोके, घोरातिघोरं नरकं वदन्ति ।।	इन्द्रवज्रा	102

क्र.सं.	श्लोक	छन्द	श्लोक सं
142.	मूर्खोऽपि शोभते तावत् सभायां वस्त्रवेष्टितः । तावच्च शोभते मूर्खो यावत् किंचित् न भाषते।।	अनुष्टुप्	109
143.	मौनान्मूकः प्रवचनपटुश्चाटु को जल्पको वा । धृष्टः पार्श्वे वसति च तदा दूरतश्चाप्रगल्भः । क्षान्त्या भीरूर्यदि च सहते प्रायशो नाभिजातः । सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ।।		138
144.	मित्रद्रोही कृतघ्नश्च यश्च विश्वासघातकः । ते नराः नरकं यान्ति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।।	अनुष्टुप्	158
145.	मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णाः । त्रिभुवन–मुपकार श्रेणिभिः प्रीणयन्तः । पर–गुण–परमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यम् । निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ।।		167
146.	महत्वमेतन् महतां नयालंकारधारिणः । न मु चन्ति यदारब्धं कृच्छ्रेऽपि व्यसनोदये।।	अनुष्टुप्	168
147.	मत्तः प्रमत्तश्चोन्मत्तः श्रान्तः क्रुद्धो बुभुक्षितः । लुब्धो भीरू त्वरायुक्तः कामुकश्च न धर्मवित्।।	अनुष्टुप्	209
148.	यौवनं धन सम्पत्ति : प्रभुत्वमविवेकिता । एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ।।	अनुष्टुप्	4
149.	यथा ह्येकेन चक्रेण न रथस्य गतिर्भवेत् । तथा पुरूषकारेण बिना दैवं न सिद्ध्यति ।।	अनुष्टुप्	11
150.	यथा मृत्पिण्डतः कर्ता कुरूते यद् यदिच्छति । एवमात्मकृतं कर्म मानवः प्रतिपद्यते ।।	अनुष्टुप्	14
151.	यत्र विद्वज्जनों नास्ति, श्लाध्यस्तत्राऽल्पधीरपि । निरस्त पादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते ।।	अनुष्टुप्	46

क्र.सं.	श्लोक	छन्द	श्लोक सं.
152.	यस्मिन् देशे न सम्मानो न वृत्तिर्नच बान्धवः । न च विद्यागमः कश्चित् तं देशं परिवर्जयेत् ।।	अनुष्टुप्	67
153.	यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः । यस्यार्थाः स पुमान् लोके यस्यार्थः स हि पण्डितः।।	अनुष्टुप्	73
154.	यदि स्यात् पावकः शीतः प्रोष्णो वा शशला छनः । स्त्रीणां तदा सतीत्वं स्याल् यदि स्यात् दुर्जनो हितः।।	अनुष्टुप्	99
155.	यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता । साप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः। अस्मत् कृते च परितुष्यति काचिदन्या । धक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च ।।	बसन्त तिलका	105
156.	येषां न विद्या न तपो न दानम् ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः ते मर्त्य लोके भुविभार भूताः मनुष्य रूपेण मृगाः चरन्ति ।।	उपजाति	113
157.	यद् धात्रा निजभाल पट्टलिखितं स्तोकं महद्वाधनम् । तत् प्राप्नोति मरूस्थलेऽपि नितरां मेरौ ततो नाधिकम्। तद् धीरोभव वित्तवत्सु कृपणां वृत्तिं वृथा मा कृथाः । कूपेपश्य पयोनिधावपि घटो गृहणाति तुल्यं जलम् ।।		132
158.	यः प्रीणयेत्सुचरितैः पितरं स पुत्रो । यद् भर्तुरेव हितमिच्छति तत्कलत्रम्। यन्मित्रमापदि सुखे च समक्रियं यद्। एतत् त्रयं जगति पुण्यकृतो लभन्ते।।	बसन्त तिलका	149

क्र.सं.	श्लोक	छन्द	श्लोक सं.
159.	या साधूश्चं खलान् करोति विदुषो मूर्खान्हितान्वेषिणः । प्रत्यक्षं कुरूते परोक्षममृतं हालाहलं तत् क्षणात् । तामाराधय सत्क्रियां भगवतीं भोक्तुं फलं वाच्छितं। हे साधो व्यसनैर्गुणेषु विपुलेष्वास्थां वृथा मा कृथाः।।		193
160.	रूप यौवन सम्पन्ना विशाल कुल सम्भवाः । विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः।।	अनुष्टुप्	18
161.	रहस्य भेदो या चा च नैष्ठुर्य चलचित्तता । क्रोधो निःसत्यता द्यूतमेतत् मित्रस्य दूषणम् ।।	अनुष्टुप्	61
162.	राजपत्नी गुरोः पत्नी मित्र पत्नी तथैव च। पत्नीमाता स्वमाता च पंचैताः मातरः स्मृताः।।	अनुष्टुप्	101
163.	राजन् दुधुक्षसि यदि क्षितिधेनुमेनां । तेनाद्य वत्समिव लोकममुं पुषाण ।। तस्मिंश्च सम्यगनिशं परिपोष्यमाणे । नाना फलैः फलति कल्पलतेव भूमिः ।।	बसन्त तिलका	128
164.	रोहते शायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम् । वाचा दुरूक्तं वीभत्सं नापि रोहति वाक्क्षतम्।।	अनुष्टुप्	205
165.	लेभात् क्रोधः प्रभवति लोभात् कामः प्रजायते । लेभान्मोहश्च नाशश्च लोभः पापस्य कारणम् ।।	अनुष्टुप्	34
166.	लोक यात्रा भयं लज्जा दाक्षिण्यं त्यागशीलता । यत्र प च न विद्यन्ते न कुर्यात् तत्र संस्थितिम् ।।	अनुष्टुप्	69
167.	लोभेन बुद्धिश्चलति लोभो जनयते तृषाम् । तृषार्तो दुःखमाप्नोति परत्रेह च मानव : ।।	अनुष्टुप्	78
68.	लेखनी पुस्तिका नारी पर हस्ते न दीयताम् । आगता दैवयोगेन नष्टा भ्रष्टा च मर्दिता ।।	अनुष्टुप्	135

क्र.सं.	श्लोक	छन्द	श्लोक सं.
169.	लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः । सत्यं चेत्तपसा चकिं शुचिमनो यद्यस्ति तीर्थेन किम् ।		136
170.	लज्जा गुणौघ जननीं जननीमिव स्वाम् । अत्यन्त शुद्धहृदयामनुवर्तमानाम् । तेजस्विनः सुखमसूनपि संत्यजन्ति । सत्यव्रत व्यसनिनो न पुनः प्रतिज्ञाम् ।।	बसन्त तिलका	214
171.	कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान् न धार्मिकः। काणेन चक्षुषा किं वा चक्षुः पीड़ैव केवलम् ।।	अनुष्टुप्	3
172.	वरमेको गुणी पुत्रो न च मूर्खशतैरपि । एकश्चन्द्रस्तमोहन्ति न च तारागणैरपि ।।	अनुष्टुप्	8
173.	विपदि धैर्यमथाम्युदये क्षमा , सदसि वाक् पटुता युधि विक्रमः । यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ, प्रकृति सिद्धमिदं हि महात्मनाम् ।।	उपजाति	36
174.	वरं मौनं कार्यं न च वचनमुक्तं यदनृतं । वरं क्लैब्यं पुंसां न च परकलत्राऽभिगमनम्।। वरं प्राण त्यागो न च पिशुनवाक्येष्वभिरुचिः वरं भिक्षाशित्वं न च परधनाऽऽस्वादनसुखम्।।		77
175.	विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तंधनम् । विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरूणां गुरूः । विद्या बन्धु जनो विदेशगमने विद्या परं दैवतम् । विद्या राजसु पूज्यते नहिं धनं विद्याविहीनः पशुः।।		119
176.	विद्या कीर्तिः पालनं ब्राह्मणानां । दानं भोगो मित्र संरक्षणं च । येषामेते षड्गुणा न प्रवृत्ताः । कोऽर्थस्तेषां पार्थिवोपाश्रयेण ।।	इन्द्रवज्रा	131

क्र.सं.	श्लोक	छन्द	श्लोक सं.
177.	वरं वनं वरं भैक्ष्यं वरं भारोपजीवनम् । वरं व्याधिर्मनुष्याणां नाधिकारेण सम्पदः।	अनुष्टुप्	140
178.	वा छा सज्जन संगमे परगुण प्रीतिर्गुरौ नम्रता विद्यायां व्यसनं स्वयोषिति रतिः लोकापवादाद्भयम् । भक्तिः ब्रह्मणि शक्तिरात्म दमने संसर्गमुक्तिः खले– ष्वेते तेषु वसंति निर्मल गुणस्तेम्यो नरेम्यो नमः ।।		144
179.	वने रणे शत्रु जलाग्नि मध्ये महार्णवे पर्वतमस्तके वा। सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि।।	उपजाति	189
180.	विद्या हि का ब्रह्मगति प्रदात्री । बोधो हि को यस्तु विमुक्ति हेतुः। को लाभ आत्मावगमोहि यो वै । जितं जगत्केन मनो हि येन ।।	इन्द्रवज्रा	201
181.	वह्निस्तस्य जलायते जलनिधिः कुल्यायते तत्क्षणात् । मेरुः स्वल्पशिलायते मृगपतिः सद्यः कुरंगायते । व्यालो माल्यगुणायते विषरपः पीयूषवर्षायते । यस्यांगेऽखिललोक वल्लभतमं शीलं समुन्मीलति ।।		213
182.	विदुषां वदनात् वाचः सहसा यान्ति नो बहिः । याताश्चेन्न पराञ्चन्ति द्विरदानां रदा इव ।।	अनुष्टुप्	216
183.	श .ाभिः सर्वमाक्रान्तमन्नं पानं च भूतले । प्रवृत्तिः कुत्र कर्तव्या जीवितव्यं कथंनु वा ।।	अनुष्टुप्	32
184.	शरीरस्य गुणाना च दूरमत्यन्तमन्तरम् । शरीरं क्षणविध्वंसि कल्पान्तस्थायिनो गुणाः।।	अनुष्टुप्	41
185.	शशि दिवाकरयोर्ग्रहपीडनं गजभुजंगमयोरपि बन्धनम् । मतिमताञ्च विलोक्य दरिद्रतां विधिरहो बलवानिति में मतिः।।	उपजाति	42

क्र.सं.	श्लोक	छन्द	श्लोक सं.
186.	शत्रुणा नहि सन्दध्यात् संश्लिष्टेनाऽपि संधिना । सुतप्तमपि पानीयं शमयत्येव पावकम् ।।	अनुष्टुप्	56
187.	शुचित्वं त्यागिता शौर्य सामान्यं सुखदुःखयो : । दाक्षिण्य चाऽनुरक्तिश्च सत्यता च सुहृद् गुणः।।	अनुष्टुप्	59
188.	शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खाः । यस्तु क्रियावान् पुरूषः स विद्वान् । सुचिन्तित चौषधमातुराणाम् न नाममात्रेण करोत्यरोगम् ।।	इन्द्रवज्रा	87
189.	शशि दिवसधूसरो गलित यौवना कामिनी । सरो विगतवारिजं मुखमनक्षरं स्वाकृतेः । प्रभुर्धनपरायणः सततदुर्गतः सज्जनो । नृपांगणतः खली मनसि सप्त शल्यानि में।।		139
190.	श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन । दानेन पाणिर्न तु कंकणेन । विभाति कायः करूणापराणाम् । परोपकारैर्न तु चन्दनेन ।।	इन्द्रवज्रा	153
191.	शूरान् महान् शूरतमोस्ति को वा । मनोज वाणैः व्यथितो न यस्तु । प्राज्ञोऽतिधीरश्च शमोस्ति को वा । प्राप्तोन मोहं ललना कटाक्षैः ।।	इन्द्रवज्रा	207
192.	षड् दोषाः पुरूषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता । निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रिता ।।	अनुष्टुप्	37
193.	सर्वद्रव्येषु विद्यैव द्रव्यमाहुरनुत्तमम् । अहार्यत्वात्–अनर्घत्वात्–अक्षयत्वात् च सर्वदा।।	अनुष्टुप्	1
194.	सुकृतं विष्णुगुप्तस्य मित्राप्तिः भार्गवस्य च । बृहस्पतेरविश्वासो नीतिसंधिस्त्रिधा स्मृता ।।	अनुष्टुप्	52

क्र.सं.	श्लोक	छन्द	श्लोक सं.
195.	संयोजयति विद्यैव नीचगाऽपि नरं सरित् । समुद्रमिव दुर्धर्ष नृपं भाग्यमतः परम् ।।	अनुष्टुप्	2
196.	स जातो येन जातेन याति वंश : समुन्नतिम् । परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते ।।	अनुष्टुप्	7
197.	सर्वस्य हि परीक्ष्यन्ते स्वभावा नेतरे गुणाः । अतीत्य हि गुणान् सर्वान् स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते ।।	अनुष्टुप्	29
198.	स हि गगन विहारी कल्मषध्वंसकारी । दशशतकरधारी ज्योतिषां मध्यचारी ।। विधुरपि विधियोगात् ग्रस्यते राहुणाऽसौ लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः ।।		30
199.	सुजीर्णमन्नं सुविचक्षणः सुतः । सुशासिता स्त्री नृपतिः सुसेवितः सुचिन्त्य चोक्तं सुविचार्य यत् कृतम् सुदीर्घकालेऽपि न याति विक्रियाम् ।।	उपजाति	31
200.	संहतिः श्रेयसी पुसां स्वकुलैरल्पकैरपि । तुषेणापि परित्यक्ताः न प्ररोहन्ति तण्डुलाः ।।	अनुष्टुप्	39
201.	स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते दन्ताः केशा नखा नराः । इति विज्ञाय मतिमान् स्वस्थानं न परित्यजेत् ।।	अनुष्टुप्	64
202.	स्थानमुत्सृज्य गच्छन्ति सिंहाः सत्पुरुषा गजाः । तत्रैव निधनं यान्ति काकाः कापुरुषा मृगाः ।।	अनुष्टुप्	65
203.	सुखमापतितं सेव्यं दुःखमापतितं तथा। चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानिच ।	अनुष्टुप्	88
204.	स्वभावजं तु यन्मित्रं भाग्येनैवाभिजायते । तदकृत्रिमसौहार्दमापत्स्वपि न मुञ्चति ।।	अनुष्टुप्	95

क्र.सं.	श्लोक	छन्द	श्लोक सं.
205.	सुमुखेन वदन्ति वल्गुना प्रहरन्त्येव शितेन चेतसा। मधुतिष्ठति वाचि योषितां हृदये तु हलाहलं विषम् ।।		100
206.	सुनुः सच्चरितः सती प्रियतमा स्वामी प्रसादोन्मुखः । स्निग्धं मित्रमव चकः परिजनो निः क्लेशलेशं मनः।		121
207.	स्वल्पं स्नायुवसावलेपमलिनं निर्मांसमप्यस्थि गौः । श्वा लब्ध्वापरितोषमेति न तु तत्तस्य क्षुधाशान्तये । सिंहो जम्बुकमंकमागतमपि त्यक्त्वा निहंति द्विपम्। सर्वः कृच्छ्रगतोऽपि वांछति जनः सत्वानुरूपं फलम् ।।		122
208.	सत्याऽनृता च परुषा प्रियवादिनी च । हिंस्रा दयालुरपि चार्थपरा वदान्या । नित्य व्यया प्रचुर नित्यधनागमा च । वेश्यांगनेव नृप नीतिरनेकरूपा ।।	बसन्त तिलका	129
209.	सपदि विलयमेतु राजलक्ष्मी– रुपरि–पतन्त्वथवा कृपाणधाराः । अपहरतुतरां शिरः कृतान्तो मम तु मतिर्न मनागुपैतु धर्मात् ।		172
210.	स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वयं तत्फलमश्नुते । स्वयं भ्रमति संसारे स्वयं तस्माद् विमुच्यते ।।	अनुष्टुप्	177
211.	स्तब्धस्य नश्यति यशो विषमस्य मैत्री । नष्टेन्द्रियस्य कुलमर्थपरस्य धर्मः । विद्याधने व्यसनिनः कृपणस्य सौख्यम्। राज्यं प्रमत्तसचिवस्य नराधिपस्य ।।	बसन्त तिलका	182
212.	सुहृद्भिराप्तैरसकृद्विचारितम् । स्वय च बुद्ध्या प्रविचारिताश्रयम् । करोति कार्यं खलु यः स बुद्धिमान् । स एक लक्ष्म्याः यशसा च भाजनम्।।	उपजाति	195

क्र.सं.	श्लोक	छन्द	श्लोक सं.
213.	हा हा पुत्रक ? नाधीतं गतास्वेतासु रात्रिषु । तेन त्वं विदुषां मध्ये पे. गौरिव सीदसि ।।	अनुष्टुप्	9
214.	हीयते हि मतिस्तात हीनै : सह समागमात् । समैश्च समतामेति विशिष्टैश्च विशिष्टताम् ।।	अनुष्टुप्	21
215.	हर्तुर्याति न गोचरं किमपि शं पुष्णाति यत्सर्वदा । ह्यर्थिभ्यः प्रतिपाद्यमानमनिशं प्राप्नोति बृद्धिं पराम्।		117
216.	हस्तिदन्त समानं हि निःसृतं महतां वचः । कूर्मग्रीवेव नीचानां वाचः याति प्रयाति च ।।	अनुष्टुप्	215

(1)

।। विद्या की श्रेष्ठता ।।

सर्वद्रव्येषु विद्यैव द्रव्यमाहुरनुत्तमम् ।
अहार्यत्वात्–अनर्घत्वात्–अक्षयत्वात्च सर्वदा।।

शब्दार्थ :– सर्वद्रव्येषु = सभी धनों (द्रव्यों) में, विद्यैव = विद्या ही, द्रव्यम् = धन, आहुः = कहा गया है, अनुत्तमम् = उत्तम से अधिक (सर्वश्रेष्ठ), अहार्यत्वात् = हार्य = चोरी,, न = नहीं होने से, अनर्घत्वात् = अर्घ–मूल्य , न = नहीं होने से, (अर्थात् अमूल्य होने से), अक्षयत्वात् = क्षय–नाश, न = नहीं होने से , च = और, सर्वदा = हमेशा।

भावार्थ :– सभी धनों में विद्या ही सर्वश्रेष्ठ धन कहा गया है क्योंकि उसको न तो कोई चुरा सकता तथा न तो कोई उसे खरीद सकता है और न तो उसका क्षय ही होता है ।

(2)

।। विद्या उन्नति का श्रेष्ठ साधन ।।

संयोजयति विद्यैव नीचगाऽपि नरं सरित् ।
समुद्रमिव दुर्धर्षं नृपं भाग्यमतः परम् ।।

शब्दार्थ :– संयोजयति = प्राप्त करा देती है, विद्यैव = विद्या ही, नीचगाऽपि = नीचे, गा = जाने वाली,, अपि = भी,, नरं = मनुष्य (को), सरित् =नदी, समुद्रमिव =जलधि के समान, दुर्धर्षं =कठिनाई से प्राप्त करने योग्य, नृपं = राजा को, भाग्यम् = भाग्य के अधीन, अतः इसके, परम् = बाद।

भावार्थ :– नीचे बहने वाली नदी जिस प्रकार तिनके (तुच्छ) आदि को समुद्र तक पहुँचा देती है उसी प्रकार विद्या भी नीच व्यक्ति को राजा के पास पहुँचा देती है इसके बाद भाग्य के अधीन है।

(3)

।। शस्त्र और शास्त्र विद्या में कौन श्रेष्ठ ।।

विद्या शस्त्रंच शास्त्रंच द्वे विद्ये प्रतिपत्तये ।
आद्या हास्याय बृद्धत्वे द्वितीयाद्रियते सदा।।

शब्दार्थ :– विद्या = ज्ञान (शिक्षा), शस्त्रंच = शस्त्र अर्थात् लड़ाई के साधन, (और) शास्त्रंच = शास्त्रों का ज्ञान, द्वे = दो प्रकार की, विद्ये = विद्या, प्रतिपत्तये = ज्ञान के लिये (होता है), आद्या = पहली शस्त्र विद्या, हास्याय = हंसी (उपहास) के लिए, बृद्धत्वे = बृद्धावस्था में, (होती है) द्वितीया = दूसरी शास्त्र विद्या, आद्रियते = आदरणीय होती है, सदा = हमेशा ।

भावार्थ :–विद्या दो प्रकार की होती है एक शस्त्र विद्या जो लड़ाई झगड़ा आदि का साधन होने से शरीर बल सापेक्ष है और दूसरी शास्त्र विद्या अर्थात् विविध शास्त्रों का ज्ञान जो बुद्धि सापेक्ष है । किन्तु पहली शस्त्र विद्या वृद्धावस्था में (शक्ति कम हो जाने से) हंसी कराती है किन्तु दूसरी शास्त्र विद्या (ज्ञान) हमेशा (जीवन पर्यन्त) आदर कराती है ।

(4)

।। अनर्थ के चार साधन ।।

यौवनं धन सम्पत्ति : प्रभुत्वमविवेकिता ।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ।।

शब्दार्थ :– यौवनं = जवानी,, धनसम्पत्तिः = धन वैभव, प्रभुत्वम् = अधिकार सम्पन्नता, अविवेकिता =विवेक का न होना, एक–एकम् – अपि–अनर्थाय = एक एक ही अनर्थ के लिए है, किमु = कहना ही क्या है, यत्र = जहाँ, चतुष्टयम् = चारों हो ।

भावार्थ :– जवानी, धनसम्पत्ति, प्रभुता (अधिकार सम्पन्न होना), विवेक रहित होना, ये चारों में एक एक ही अनर्थ के लिए होता है फिर तो जहाँ चारों हो वहां क्या कहना है ।

(5)

।। ऐसे पुत्र से क्या लाभ ।।

कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान् न धार्मिकः।।
काणेन चक्षुषा किं वा चक्षुः पीड़ैव केवलम् ।।

शब्दार्थ :– को = क्या, अर्थः = प्रयोजन, पुत्रेण = पुत्र से, जातेन = पैदा होने से, यो = जो, न = नहीं, विद्वान् = विद्या से सम्पन्न ज्ञान वाला, न = नहीं, धार्मिकः = धर्म का आचरण करने वाला, काणेन = काने, चक्षुषा = नेत्र से, किं = क्या (लाभ) चक्षुः = नेत्र (का), पीड़ैव = पीड़ा (कष्ट) ही, केवलम् = मात्र।

भावार्थ :–ऐसे पुत्र के उत्पन्न होने से क्या लाभ जो न धार्मिक हो और न ही विद्वान् हो। जिस प्रकार कि कानी आँख से कोई लाभ नहीं होता उससे केवल नेत्र को कष्ट ही होता है ।

(6)

।। कौन पुत्र श्रेष्ठ किसकी अपेक्षा ।।

अजातमृतमूर्खाणां वरमाद्यौ न चान्तिम : ।
सकृद्दुःखकरावाद्यावन्तिमस्तु पदे पदे ।।

शब्दार्थ :– अजात–मृत–मूर्खाणां = नहीं उत्पन्न हुए, मरे हुए, (तथा) मूर्खों में, वरमाद्यौ = श्रेष्ठ आदि दो (हैं) न = नहीं, चान्तिमः = निश्चित (रूप से) अन्त वाला, सकृद् = एक वार, दुःखकरौ = दुःख देने वाले, आद्यौ = पहले के दोनों , अन्तिमस्तु = किन्तु आखिरी , पदे पदे = पग पग पर ।

भावार्थ :– जो पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ, जो उत्पन्न होकर मर गया, तथा जो उत्पन्न होकर मूर्ख हो गया, ऐसे तीन प्रकार के पुत्रों में पहले के दो श्रेष्ठ हैं किन्तु अन्तिम नहीं, क्योंकि पहले वाले दो तो एक बार ही दुःख देते हैं किन्तु सबसे बाद का (मूर्ख) तो पग पग पर दुःख देता है ।

(7)

।। कुलके अभ्युदय कर्ता का जन्म श्रेष्ठ ।।

स जातो येन जातेन याति वंश : समुन्नतिम् ।
परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते ।।

शब्दार्थ :– स =वह, जातो =उत्पन्न हुआ, येन = जिसके, जातेन =उत्पन्न होने से, याति =प्राप्त होता है, वंशः =कुल, समुन्नतिम् =उन्नति को, परिवर्तिनि=परिवर्तनशील, संसारे=संसार में, मृतः= मरा हुआ, को =कौन, वा=निश्चय ही, न=नहीं, जायते = होता है ।

भावार्थ :– उसी का जन्म लेना (प्रशंसनीय) श्रेष्ठ है जिसके जन्म लेने से कुल की उन्नति हो,क्योंकि इस परिवर्तन शील संसार में कौन नहीं पैदा होता है तथा मरता है ।

(8)

।। सौ मूर्खों की अपेक्षा एक बुद्धिमान् पुत्र श्रेष्ठ ।।

वरमेको गुणी पुत्रो न च मूर्खशतैरपि ।
एकश्चन्द्रस्तमोहन्ति न च तारागणैरपि ।।

शब्दार्थ :– वरम् = श्रेष्ठ, एको = एक, गुणी = गुणवान् (गुणवाला) पुत्रो = पुत्र, न = नहीं, च=प्रयोजन, मूर्खशतैरपि = सौ–मूर्खों से भी,, एकः = एक, चन्द्रः =चन्द्रमा, तमो =अन्धकार को, हन्ति =नष्ट करता है, न च =निश्चय ही नहीं, तारागणैरपि = तारागणों के द्वारा ।

भावार्थ :– एक ही गुणवान् पुत्र सौ मूर्ख पुत्रों की अपेक्षा श्रेष्ठ है क्योंकि एक चन्द्रमा ही अन्धकार को नष्ट कर देता है किन्तु ताराओं का विशाल समूह भी अन्धकार को नष्ट नहीं कर पाता है।

(9)

।। पंक में फँसी गाय के समान दुःखी कौन ।।

हा हा पुत्रक ? नाधीतं गतास्वेतासु रात्रिषु ।
तेन त्वं विदुषां मध्ये पंक गौरिव सीदसि ।।

शब्दार्थ :– हा हा =दुःख है, पुत्रक =हे पुत्र, नाऽधीतं =नहीं, पढ़ा, गतास्वेतासु = बीती हुयी इन, रात्रिषु =रातों में, तेन = इसलिए, त्वं =

तुम, विदुषां =विद्वानों के, मध्ये =बीच में, पंक = (कीचड़) में, गौरिव = गाय के समान, सीदसि = दुःख पा रहे हो ।

भावार्थ :–हे पुत्र ? दुःख है तुमने इन बीती हुयी रातों में पढ़ाई नहीं की इसलिए पंक अर्थात् कीचड़ में फंसी हुयी गाय के समान विद्वानों के बीच दुःख पा रहे हो।

(10)

।। विष के समान क्या है ।।

अनभ्यासे विषं विद्या, चाजीर्णे भोजनं विषम्।
विषं सभादरिद्रस्य, बृद्धस्य तरूणी विषम् ।।

शब्दार्थ :– अनभ्यासे = अभ्यास के बिना, विषं = जहर, विद्या = शिक्षा (हो जाती है), च = और , अजीर्णे = अपच होने पर, भोजनं = भोजन करना, विषम् = विष के समान है, विषं = विष के समान, सभा = सम्मेलन, दरिद्रस्य = दरिद्र (वस्त्रहीन) के लिए, बृद्धस्य =बूढ़े व्यक्ति के लिए, तरूणी =जवान स्त्री , विषम् =विष है ।

भावार्थ :–बिना अभ्यास के विद्या विष के समान हो जाती है तथा अजीर्ण हो जाने पर भोजन करना विष के समान है और दरिद्र व्यक्ति के लिए सभा विष के समान है क्योंकि वह वस्त्र के अभाव में सभा में जा नहीं सकता इसी प्रकार वृद्ध पुरूष के लिए जवान स्त्री भी विष के समान होती है ।

(11)

।। भाग्य के लिए पुरूषार्थ आवश्यक ।।

यथा ह्येकेन चक्रेण न रथस्य गतिर्भवेत् ।
तथा पुरूषकारेण बिना दैवं न सिद्धयति ।।

शब्दार्थ :– यथा = जैसे, ह्येकेन चक्रेण= निश्चित रूप से एक चक्के के द्वारा, रथस्य = रथ की,, गतिः = चाल (चलना) न = नहीं, भवेत् = होती है , तथा = उसी प्रकार से, पुरूषकारेण बिना = पुरूषार्थ के बिना, दैवं = भाग्य, न सिद्धयति=नहीं सफल होता है ।

भावार्थ :– जिस प्रकार एक चक्के से रथ की गति नहीं होती है उसी प्रकार पुरूषार्थ के बिना भाग्य भी सफल नहीं होता है ।

(1 2)

।। बिना पुरूषार्थ के तिल से भी तेल नहीं ।।

न दैवमपि सि चत्य त्यजेदुद्योगमात्मन : ।
अनुद्योगेन तैलानि तिलेभ्यो नाप्तुमर्हति ।।

शब्दार्थ :– न = नहीं, दैवमपि = भाग्य को ही, सि चत्य = सोचकर, त्यजेद् = त्यागना चाहिए, उद्योग = कर्म, आत्मनः = अपना, अनुद्योगेन = बिना कर्म किए, तैलानि = तेल, तिलेभ्यो = तिलों से, नाप्तुमर्हति = नहीं प्राप्त किया जा सकता है ।

भावार्थ :– भाग्य के भरोसे अपना उद्योग पुरूषार्थ नहीं छोड़ना चाहिए, जैसे बिना पुरूषार्थ किये तो तिलों से भी तैल (तेल) नहीं प्राप्त किया जा सकता है ।

(1 3)

।। पुरूषार्थ का महत्व।।

उद्योगिनं पुरुषसिंहमु पैतिलक्ष्मी–दैंवेन
देयमिति का पुरुषा वदन्ति ।
दैवं निहत्य कुरू पौरूषमात्मशक्त्या यत्ने
कृते यदि न सिद्धयति कोत्र दोषः ।।

शब्दार्थ :– उद्योगिनं =उद्योग करने वाले, पुरूषसिंहम् =पुरूष श्रेष्ठ को, लक्ष्मीः= धन सम्पत्ति, उपैति = प्राप्त होती हैं, दैवेन= भाग्य के द्वारा, देयम् = दिया जायेगा, इति=ऐसा, कापुरूषाः=कायर पुरूष, वदन्ति=बोलते हैं, दैवं=भाग्य को, निहत्य =त्याग करके (दूर करके) कुरू = करो, पौरूषम् = पुरूषार्थ, आत्मशक्त्या =अपनी शक्ति से, यत्ने = यत्न के, कृते =करने पर, यदि=कदाचित्, न=नहीं, सिद्धयति = सिद्ध (सफल) नहीं होता है, कोऽत्र = क्या इसमें, दोषः = दोष है।

भावार्थ :– पुरूषार्थ करने वाले श्रेष्ठ पुरूष को लक्ष्मी प्राप्त होती है, भाग्य जो देगा वही मिलेगा, ऐसा कायर पुरूष बोलते हैं। भाग्य का भरोसा न करके अपनी शक्ति से कर्म करो यदि यत्न करने पर कार्य सिद्ध नहीं होता है तो इसमें अपना कोई दोष नहीं है, या यह देखो कि अपने कार्य में कहां दोष रह गया है।

(14)

।। जो करे, वह पाए ।।

यथा मृत्पिण्डतः कर्ता कुरुते यद् यदिच्छति ।
एवमात्मकृतं कर्म मानवः प्रतिपद्यते ।।

शब्दार्थ :– यथा = जैसे, मृत्पिण्डतः = मिट्टी के गोले से, कर्ता = करने वाला (कुम्हार), कुरूते = करता है, यद् यद् = जो जो, इच्छति = चाहता है। एवं = इसी प्रकार , आत्मकृतं = अपना किया हुआ, कर्म= कर्म फल, मानवः = मनुष्य, प्रतिपद्यते=प्राप्त करता है ।

भावार्थ :– जैसे मिट्टी के गोले से कर्त्ता कुम्हार जो जो चाहता है वह–वह बना लेता है उसी प्रकार मनुष्य अपना किया हुआ कर्म फल प्राप्त करता है ।

(15)

।। भाग्य होने पर भी पुरूषार्थ आवश्यक ।।

काकतालीयवत्प्राप्तं दृष्ट्वाऽपि निधिमग्रतः ।
न स्वयं दैवमादत्ते पुरूषार्थमपेक्षते ।।

शब्दार्थ :– काकतालीयवत् = काकतालीय न्याय से, प्राप्तं = प्राप्त, दृष्ट्वाऽपि = देखकर भी, निधिम् = निधि को, अग्रतः = आगे, न = नहीं, स्वयं, दैवम् = भाग्य को, आदत्ते = ग्रहण करे, पुरूषार्थम् = पुरूषार्थ को, अपेक्षते = अपेक्षा करता है ।

भावार्थ :–काकतालीय न्याय से कौवे के बैठने के समय ताल फल का गिर जाना जैसे सहसा होता है, उसी प्रकार सहज सामने उपस्थित धन–रत्न भी, बिना पुरूषार्थ (हाथ से उठाये बिना) प्राप्त नहीं होता है।

(16)

।। सोए शेर के मुख में मृग नहीं जाता।।

उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः ।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशंति मुखे मृगाः।।

शब्दार्थ :– उद्यमेन = उद्यम से, हि = निश्चित, सिद्ध्यन्ति = सिद्ध होते हैं, कार्याणि = कार्य , न = नहीं, मनोरथैः = मनोरथ से, न = नहीं, हि = निश्चित, सुप्तस्य = सोते हुए, सिंहस्य = सिंह के, प्रविशन्ति = प्रवेश करते हैं, मुखे = मुख में, मृगाः = मृग ।

भावार्थ :– कार्य उद्यम से सिद्ध होते हैं मनोरथ से नहीं, जैसे सोये हुए सिंह के मुख में (बिना प्रयत्न के अपने आप) मृग प्रवेश नहीं करते हैं ।

(17)

।। मूर्ख पुत्र सभा में शोभा नही पाता।।

माता शत्रु : पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा ।।

शब्दार्थ :– माता=जननी, शत्रु=अहित करने वाली, पिता =जनक, वैरी =अहित करने वाला, येन=जिसके द्वारा, बालो=बालक, न =नहीं, पाठितः=पढ़ाया गया, न =नहीं, शोभते =शोभा पाता है, सभा–मध्ये=सभा में, हंसमध्ये=हंस के बीच में, वको =वगुला, यथा = जैसे।

भावार्थ :– जो माता – पिता अपने पुत्र को नहीं पढ़ाते वे उसके लिए शत्रु के समान होते हैं क्योंकि जिस प्रकार हंसों के मध्य बगुला शोभा नहीं पाता, वैसे ही मूर्ख पुत्र सभा में शोभा नहीं पाता ।

(18)

।। विद्याहीन के सबगुण बेकार ।।

रूप यौवन सम्पन्ना विशाल कुल सम्भवाः ।
विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः।।

शब्दार्थ :– रूप = शरीर का सौन्दर्य, यौवन = युवावस्था से, सम्पन्ना = युक्त, विशाल = महान्, कुल = वंश से, सम्भवाः = उत्पन्न, विद्याहीनाः = विद्यारहित, न = नहीं, शोभन्ते = शोभा पाते हैं, निर्गन्धाः= बिना गन्ध, इव = समान, किंशुकाः=किंशुक के पुष्प।

भावार्थ :– शरीर के सौन्दर्य और युवावस्था से युक्त तथा महान् कुल में उत्पन्न होने पर भी विद्या के बिना उसी प्रकार शोभा नहीं होती है, जिस प्रकार कि बिना गंध के किंशुक पुष्प की शोभा नहीं होती है ।

(19)

।। अनपढ़ की शोभा नहीं ।।

पुस्तकेषु च नाऽधीतं नाऽधीतं गुरुसन्निधौ ।
न शोभते सभा मध्ये जारगर्भ इव स्त्रिया :।।

शब्दार्थ :– पुस्तकेषु = पुस्तकों में, च = और, नाधीतं = नहीं पढ़ा, नाध्‍ीतं = नहीं पढ़ा, गुरुसन्निधौ = गुरु के समीप, न = नहीं, शोभते = शोभा पाता है, सभामध्ये = सभा के बीच में, जारगर्भ इव = अवैध गर्भ के समान, स्त्रिया: = स्त्रियों के ।

भावार्थ :–न तो पुस्तकों से अध्ययन किया न तो गुरु के पास अध्ययन किया ऐसे पुरुष की, स्त्री के अवैध गर्भ के समान सभा में शोभा नहीं होती है ।

(20)

।। संसर्ग से मूर्ख भी विद्वान्।।

काचः का चन–संसर्गात् धत्ते मारकतीर्द्युतीः ।
तथा सत्सन्निधानेन मूर्खो याति प्रवीणताम् ।।

शब्दार्थ :– काचः = काच, का चन संसर्गात् = सोने के संसर्ग से, धत्ते = धारण करता है, मारकतीः = मरकत की मणी की, द्युतीः = कान्ति, तथा = उसी प्रकार, सत्सन्निधानेन = सज्जनों के साथ रहने से, मूर्खो = मूर्ख, याति = प्राप्त हो जाता है, प्रवीणताम् = प्रवीणता को ।

भावार्थ :— जिस प्रकार सोने के संसर्ग से काँच में भी मरकत
समान कान्ति (चमक) आ जाती है उसी प्रकार सन्त पुरूषों के साथ र
से मूर्ख भी प्रवीण (गुणवान्) हो जाता है ।

(21)

।। जैसी संगती वैसी ही मति ।।

हीयते हि मतिस्तात हीनैः सह समागमात् ।
समैश्च समतामेति विशिष्टैश्च विशिष्टताम् ।।

शब्दार्थ :— हीयते = हीन होती है, हि = निश्चित, मतिः = बुद्धि, त
= हे प्रिय, हीनैः सह = हीन (नीच) पुरूषों के साथ, समागमात् = समा
से, समैश्च = अपने समान गुण वालों के साथ, समतामेति = समानता
प्राप्त होती है, विशिष्टैश्च =विशेष रूप से श्रेष्ठ गुण वालों के स
विशिष्टताम् = महानता को ।

भावार्थ :—हीन अर्थात् नीच लोगों के साथ रहने से बुद्धि नीच हो ज
है तथा अपने समान गुणवाले लोगों के साथ रहने से समान होती है अ
महान् लोगों के साथ रहने से अपनी बुद्धि भी महान् हो जाती है ।

(22)

।। गुण कहाँ प्रशंसनीय होते हैं ।।

गुणा गुणज्ञेषु गुणा भवन्ति
ते निर्गुणं प्राप्य भवन्ति दोषाः।
आस्वाद्यतोयाः प्रवहन्ति नद्यः
समुद्रमासाद्य भवन्त्यपेयाः।।

शब्दार्थ :– गुणा = (विनय विद्या दान कुशलता आदि) अच्छे गुण, गुणज्ञेषु = गुणों की परीक्षा करने में समर्थ लोगों में, गुण = प्रशंसनीय, भवन्ति = होते हैं, ते = वे, निर्गुणं प्राप्य = गुणहीन को प्राप्त करके, दोषाः = दोष, भवन्ति = हो जाते हैं, आस्वाद्यतोयाः = स्वादिष्ट जल वाली, नद्यः = नदियाँ, प्रवहन्ति = बहती हैं, समुद्रम् = समुद्र को, आसाद्य = प्राप्त करके, भवन्ति = होती हैं, अपेयाः = नहीं पीने योग्य ।

भावार्थ :– अच्छे लोगों में ही गुण प्रशंसनीय होते हैं, वे गुण, दुर्जन लोगों में दोष कारक हो जाते हैं जैसे स्वादिष्ट नदियों का जल भी समुद्र को प्राप्त होने के बाद पीने योग्य नहीं रहता है ।

(23)

।। स्वभाव परिवर्तन कठिन ।।

न दुर्जनः साधुदशामुपैति,
बहु प्रकारैरपि शिक्ष्यमाणः।
आमूलसिक्तः पयसाघृतेन,
न निम्ब वृक्षो मधुरत्वमेति।।

शब्दार्थ :– न = नहीं, दुर्जनः = दुष्ट व्यक्ति, साधुदशाम् = सज्जनता को, उपेति = प्राप्त करता है, वहु प्रकारैरपि = बहुत प्रकार से भी,, शिक्ष्यमाणः = शिक्षित करने पर, आमूलसिक्तः = जड़ तक सीचने पर भी, पयसाघृतेन = दूध घी से, न = नहीं, निम्ब = नीम का, वृक्षो = वृक्ष (पेड़) मधुरत्वम्=मधुरता को, एति = प्राप्त करता है।

भावार्थ :— दुष्ट व्यक्ति अनेक प्रकार से समझाने तथा शिक्षा देने पर भी सज्जन नहीं बन सकता है जैसे नीम के वृक्ष को दूध घी से सींचने पर भी उस में मधुरता नहीं आती है तथा वह खारा ही रहता है इसी प्रकार मनुष्य का स्वभाव बदलना बड़ा कठिन है ।

(24)

।। गलत आदमी से इच्छित प्राप्ति भी बेकार ।।

अनिष्टादिष्ट लाभेऽपि न गतिर्जायते शुभा ।
यत्रास्ते विष संसर्गोऽमृतं तदपि मृत्यवे ।।

शब्दार्थ :— अनिष्टाद् इष्ट लाभे अपि = गलत व्यक्ति से अपना अभिलषित वस्तु प्राप्त होने पर भी, न = नहीं, गतिः = परिणाम, शुभा = कल्याणकारी, जायते = होता है, यत्रास्ते = जहाँ हो, विष संसर्गो = विष का संसर्ग, अमृतं = अमृत, तदपि = वह भी , मृत्यवे = मृत्यु के लिए होता है।

भावार्थ :— गलत आदमी से अपना अभिलषित प्राप्त होने पर भी वह कल्याणकारी नहीं होता है। जैसे विष मिला हुआ अमृत भी मृत्यु का ही कारण होता है ।

(25)

।। सबको अपने समान समझो ।।

प्राणायथात्मनोऽभीष्टा भूतानामपि ते तथा ।
आत्मौपम्येन भूतानां दयां कुर्वन्ति साधव :।।

शब्दार्थ :— प्राणाः = जीव, यथा = जैसे, आत्मनो = अपना, अभीष्टा = अभीष्ट (प्रिय) होता है, भूतानामपि = प्राणियों का भी, ते = वे प्राण,

तथा = उसी प्रकार प्रिय होते हैं, आत्मौपम्येन = अपनी तुलना से, भूतानां = प्राणियों के प्रति, दयां = दयालुता को, कुर्वन्ति = करते हैं, साधवः = सज्जन लोग।

भावार्थ :— जिस प्रकार अपने को अपना प्राण प्रिय हैं उसी प्रकार (सभी) प्राणियों को भी अपने प्राण प्रिय हैं इसलिए सज्जन पुरूष सभी प्राणियों को अपने समान मान कर दया करते हैं।

(26)

।। दरिद्र को दान देना सफल ।।

मरूस्थल्यां यथा वृष्टिः क्षुधार्त्ते भोजनं तथा ।
दरिद्रे दीयते दानं सफलं पाण्डुनन्दन ? ।।

शब्दार्थ :— मरूस्थल्यां = रेगिस्तान में, यथा = जैसे, वृष्टिः = वर्षा, क्षुधार्त्ते = भूख से व्याकुल के लिए, भोजनं = भोजन, तथा = उसी प्रकार, दरिद्रे = गरीब के लिए, दीयते = दिया जाता है, दानं = दान (तो), सफलं = सफल, हे पाण्डुनन्दन = युधिष्ठिर ।

भावार्थ :— जैसे रेगिस्तान की भूमि में वर्षा तथा भूख से व्यांकुल को भोजन हितकर होता है, हे युधिष्ठिर ! उसी प्रकार गरीब को दान देना, सफल होता है।

(27)

।। परदारमातातुल्य परद्रव्य मिट्टी तुल्य ।।

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत् ।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः ।।

शब्दार्थ :— मातृवत् = माता के समान, परदारेषु = दूसरों की स्त्रियों में, परद्रव्येषु = दूसरे के धन पर, लोष्ठवत् = मिट्टी के ढेले के सामन, आत्मवत् = अपनी आत्मा के समान, सर्वभूतेषु = सभी प्राणियों में, यः = जो मनुष्य, पश्यति = देखता है, स = वह, पंडित = पंडित (बुद्धिमान्) है।

भावार्थ :—जो दूसरों की स्त्रियों को माता के समान, तथा दूसरे के धन को मिट्टी के ढेले के सामन, और सभी प्राणियों को अपनी आत्मा के समान समझता है वही पंडित अर्थात् बुद्धिमान् है ।

(28)

।। किसका विश्वास नहीं करना ।।

नदीनां शस्त्रपाणीनां, नखिनां श्रृं·णां तथा ।
विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीणु राजकुलेषु च।।

शब्दार्थ :— नदीनां = नदियों का, शस्त्रपाणीनां = शस्त्र हाथ में धारण करन वाले का, नखिनां = नाखून वालों का, श्रृं·णां = सींग वालों का, तथा = और, विश्वासों = विश्वास (भरोसा), नैव = नहीं, कर्तव्यः = करना चाहिए, स्त्रीषु = स्त्रियों पर, राजकुलेषु च = और, राजकुल पर ।

भावार्थ :—नदियों का तथा शस्त्र हाथ में लिए हुए पुरुष का एवं नखवालों का, सींग वालों का, और स्ि‍त्रयों का तथा राजकुल का विश्वास नहीं करना चाहिए ।

(29)

।। गुणों से बढ़कर स्वभाव।।

सर्वस्य हि परीक्ष्यन्ते स्वभावा नेतरे गुणाः ।
अतीत्य हि गुणान् सर्वान् स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते।।

शब्दार्थ :– सर्वस्य = सभी का, हि = निश्चित, परीक्ष्यन्ते = परीक्षा ली जाती है, स्वभावाः = स्वभाव (की), नेतरे = न अन्य, गुणाः = गुणों (की), अतीत्य = आगे बढ़कर, हि = निश्चित, गुणान् = गुणों को, सर्वान् = सभी को, स्वभावो = स्वभाव, (जन्म जात व्यवहार), मूर्ध्नि = सिर पर (सबसे ऊपर), वर्तते = होता है ।

भावार्थ :–सभी के स्वभाव की परीक्षा होती है अन्य गुणों की नहीं, क्योंकि सभी गणों से बढ़कर स्वभाव होता है ।

(30)

।। ललाट मे लिखे भाग्य को टालना असंभव।।

स हि गगन विहारी कल्मषध्वंसकारी,
दशशतकरधारी ज्योतिषां मध्यचारी ।
विधुरपि विधियोगात् ग्रस्यते राहुणाऽसौ,
लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः।।

शब्दार्थ :– स = वह, हि = प्रसिद्ध, गगन = आकाश, विहारी = विचरण करने वाला, कल्मषध्वंसकारी = अन्धकार को दूर करने वाला, ज्योतिषां = ग्रह नक्षत्रों के, मध्यचारी = बीच में चलने वाला, दशशत करधारी = एक हजार किरणों को धारण करने वाला (सूर्य) विधुरपि = चन्द्रमा भी, विधियोगात् = भाग्य के योग से, ग्रस्यते = ग्रसा जाता है

(ग्रहण लग जाता है), राहुणा = राहु के द्वारा, असौ = यह, लिखितमपि = लिखे हुए को, ललाटे = ललाट पर, प्रोज्झितुं = मिटाने में, कः = कौन, समर्थः = समर्थ है ।

भावार्थ :—आकाश में चलने वाला, अन्धकार को दूर कने वाला, एक हजार करों (हाथ या किरण) को धारण करने वाला, ग्रह नक्षत्रों के मध्य में चलने वाला, प्रसिद्ध वह सूर्य तथा चन्द्रमा भी भाग्य के योग (कारण) से राहु के द्वारा ग्रसित (दुःखी) हो जाते हैं। इसलिए ललाट पर अर्थात् भाग्य में लिखे हुए को कोई टाल नहीं सकता है। अर्थात् निकाचित कर्म अवश्यमेव भोगने योग्य होते हैं।

(31)

।। क्या ? काम, दुःखदायी नहीं होते।।

सुजीर्णमन्नं सुविचक्षणः सुतः ।
सुशासिता स्त्री नृपतिः सुसेवितः
सुचिन्त्य चोक्तं सुविचार्य यत् कृतम्
सुदीर्घकालेऽपि न याति विक्रियाम् ।।

शब्दार्थ :— सुजीणम् अन्नं = अच्छी तरह पचा हुआ अन्न (भोजन), सुविचक्षणः सुतः = सुशिक्षित पुत्र, सुशासिता स्त्री = वश में रहने वाली स्त्री, नृपतिः = राजा, सुसेवितः = सेवा से अनुकूल किया हुआ, सुचिन्त्य = अच्छी तरह से विचार करके, चोक्तं = कहा हुआ, सुविचार्य = अच्छी तरह से सोच कर, यत् = जो, कृतम् = किया हुआ, सुदीर्घकालेऽपि = बहुत समय तक, न = नहीं, याति = जाती है, विक्रियाम् = विकार को ।

भावार्थ :– अच्छी तरह पचा हुआ भोजन, पढ़ा हुआ योग्य पुत्र, वश में रहने वाली स्त्री, सेवा द्वारा अनुकूल किया हुआ राजा, विचार करके बोली हुयी बात, ठीक से सोच कर किया हुआ कार्य, बहुत दिनों तक विकार युक्त (दुःखदायी) नहीं होते हैं ।

(32)

।। शंका बीच भी कैसे जियें ।।

शंकाभिः सर्वमाक्रान्तमन्नं पानं च भूतले ।
प्रवृत्तिः कुत्र कर्तव्या जीवितव्यं कथं नु वा ।।

शब्दार्थ :–शंकाभिः = आशंकाओं से, सर्वम् = सभी, आक्रान्तम् = युक्त है, अन्नं = अन्न (भोजन की वस्तु), पानं = पीने का पेय वस्तु, च = और, भूतले = भूमि पर, प्रवृत्ति = प्रयत्न (कोशिश), कुत्र = कहाँ, कर्तव्या = करनी चाहिए, जीवितव्यं = जीवन, कथं = कैसे, नु वा = निश्चय से ।

भावार्थ :–धरती पर सभी खान पान की वस्तुएँ अनुकूलता की शंकाओं (संशय) से युक्त होतो भी जीवन की रक्षा हेतु प्रवृत्ति (प्रयास) कहाँ किया जाय । तथा जीवन कैसे जिया जाय ।

(33)

।। षड्विध प्राणी दुःख पाते।।

ईर्ष्यी घृणी त्वसन्तुष्टः क्रोधनो नित्यशं ·तः ।
परभाग्योपजीवीनी च षडेते दुःख भागिनः ।।

शब्दार्थ :–ईर्ष्यी = ईर्ष्या करने वाला, घृणी = घृणा करने वाला, त्वसन्तुष्टः = और असन्तुष्ट, क्रोधनो = क्रोधी स्वभाव वाला, नित्यशतिः=

हमेशा शंका करने वाला, परभाग्योपजीवी = दूसरे के भाग्य पर जीने वाला, च = और, षडेते = ये छह, दुःखभागिनः = दुःखी होते है ।

भावार्थ :—ईर्ष्या करने वाला, घृणा करने वाला, हमेशा असन्तुष्ट रहने वाला, क्रोध करने वाला, निरन्तर शंकालु रहने वाला और दूसरे के भाग्य पर जीने वाला, ये छह प्रकार के (प्राणी) दुःख को ही पाते हैं ।

(34)

।। लोभ सर्व विनाश का कारण।।

लेभात् क्रोधः प्रभवति लोभात् कामः प्रजायते।
लेभान्मोहश्च नाशश्च लोभः पापस्य कारणम्।।

शब्दार्थ :— लोभात् = लोभ से, क्रोधः = क्रोध, प्रभवति = होता है, लोभात् =लोभ से, कामः = इच्छा (विषय भोग वासना), प्रजायते = उत्पन्न होता है, लोभात् =लोभ से, मोहश्च=और मोह, नाशश्च= और मृत्यु, लोभः = लालच, पापस्य=पाप का, कारणम् =कारण है ।

भावार्थ :—लोभ से क्रोध होता है, लोभ से काम उत्पन्न होता है, लोभ से मोह और मृत्यु भी होती है तथा लोभ ही पाप का कारण होता है ।

(35)

।। विपत्ति काल में धीर भी अधीर।।

असम्भवं हेममृगस्य जन्म,
तथापि रामो लुलुभे मृगाय ।

प्रायः समापन्न विपत्ति काले
धियोऽपि पुंसां मलिना भवन्ति ।।

शब्दार्थ :– असम्भवं = सम्भावना रहित, हेममृगस्य =सोने के मृग का, जन्म = उत्पत्ति, तथापि =फिर भी, रामो = राम (राम चन्द्र), लुलुभे = लोभ किए, मृगाय = मृग के लिए, प्रायः = अधिकतर, समापन्न = निकटस्थ, विपत्ति काले = संकट के समय में, धियोऽपि = बुद्धि भी, पुंसां = मनुष्यों की, मलिना = मन्द, भवन्ति = हो जाती हैं ।

भावार्थ :–सोने के मृग का जन्म असंभव है फिर भी राम मृग के लिए प्रलोभित हो, जंगलों में भटके । इसी प्रकार अधिकतर विपत्ति काल के निकट होने पर मनुष्यों की बुद्धि भी मलिन हो जाती है । जिसे कहते हैं विनाश काले विपरीत बुद्धि ।

(36)

।। कल क्या करना ।।

विपदि धैर्यमथाम्युदये क्षमा ,
सदसि वाक् पटुता युधि विक्रमः ।
यशसि चाभिरूचिर्व्यसनं श्रुतौ,
प्रकृति सिद्धमिदं हि महात्मनाम् ।।

शब्दार्थ :– विपदि = विपत्ति में, धैर्य = धीरज, अथ = और, अभ्युदये =उन्नति में, क्षमा = सहनशील होना, सदसि = सभा में, वाक् पटुता = वाणी की कुशलता, युधि = युद्ध में, विक्रम = पराक्रम, यशसि = यश में, चाभिरूचिः = और अभिरूचि, व्यसनं = अत्यन्त आसक्ति, श्रुतौ = शास्त्र में, प्रकृति = स्वभाव, सिद्धमिदं = यह स्वभाव से ही होता है, महात्मनाम् =महात्माओं के।

भावार्थ :—विपत्ति में धैर्य रखना, उन्नति में क्षमाशील रहना, सभा में वाणी की कुशलता होना, युद्ध में पराक्रमशाली होना, यश में रूचि रखना, शास्त्र मे व्यसन (आसक्ति) रखना, महात्माओं में स्वभाव से ही होता है । अर्थात् ऐसे गुणवाले व्यक्ति जीवन में सफल हो जाते हैं ।

(37)

।। श्रेष्ठ पुरुष के लिए त्याज्य छह दोष ।।

षड् दोषाः पुरूषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता ।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रिता ।।

शब्दार्थ :—षड् = छह, दोषाः = दोष, पुरूषेणेह = पुरूष के द्वारा इस संसार में, हातव्या =त्यागना चाहिए, भूतिम् = कल्याण, इच्छता = चाहने वाले को, निद्रा = शयन, तन्द्रा = जड़ता, भयं = भय (कायरता), क्रोध = कोप करना, आलस्यं = आलसी होना (परिश्रम करने से कतराना), दीर्घसूत्रिता = बहुत देर में किसी कार्य को सम्पन्न करना ।

भावार्थ :—इस संसार में उन्नति चाहने वाले व्यक्ति को, निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घसूत्रिता प्रत्येक कार्य को देर से करने, या टालने का स्वभाव इन षट् दोषों का त्याग कर देना चाहिये ।

(38)

।। निर्बलों का भी संगठन बलवान् ।।

अल्पानामपि वस्तूनां संहतिः कार्यसाधिका ।
तृणैर्गुणत्वमापन्नैर्बध्यन्ते मत्तदन्तिनः ।।

शब्दार्थ :—अल्पानामपि = छोटे छोटे दुर्बल (कमजोर) भी, वस्तूनां = वस्तुओं का, संहतिः = समूह, कार्यसाधिका =कार्य सिद्ध करने वाला होता है, तृणैः = निर्बल तिनकों के द्वारा, गुणत्वमापन्नैः = रस्सी का रूप ले लेने पर, बध्यन्ते = बांध दिए जाते हैं, मत्तदन्तिनः = मतवाले हाथी ।

भावार्थ :— निर्बल वस्तुओं का भी समूह कार्य सम्पन्न करने में सफल होता है जैसे दुर्बल तिनकों की रस्सी बन जाने पर मतवाले हाथी भी बंध जाते हैं ।

(39)

।। निर्बल परिवार के साथ भी मेल जोल लाभदायक।।

संहितः श्रेयसी पुसां स्वकुलैरल्पकैरपि ।
तुषेणापि परित्यक्ताः न प्ररोहन्ति तण्डुलाः ।।

शब्दार्थ :— संहतिः = एकता (मेल जोल), श्रेयसी = कल्याण करने वाली, पुंसां = मनुष्यों की, स्वकुलैरल्पकैरपि =अपने कुल वालों के कमजोर होने पर भी, तुषेणापि = तुष (भूष) के द्वारा, परित्यक्ताः = छोड़ दिया गया, न=नहीं, प्ररोहन्ति = उगता है, तण्डुलाः = चावल।

भावार्थ :—मनुष्यों की अपने थोड़े और कमजोर कुटुम्बियों से भी रखी गई एकता मेल जोल कल्याण कारी बन जाती है अन्यथा अपने भूसी से अलग होने जाने पर चावल भी उग नहीं सकता है ।

(40)

।। धन पत्नी से भी निजरक्षा महत्वपूर्ण ।।

आपदर्थे धनं रक्षेत्, दारान् रक्षेत् धनैरपि ।
आत्मानं सततं रक्षेत् दारैरपि धनैरपि ।।

शब्दार्थ :– आपदर्थे = आपत्ति (दुर्भिक्ष अकाल) के निवारण के लिए, धनं = धन को, रक्षेत् = सुरक्षित रखना चाहिए, दारान् =स्त्रियों को, रक्षेत् = रक्षा करनी चाहिए, धनैरपि = धन से, आत्मानं = अपने को, सततं = निरन्तर (हमेशा), रक्षेत् = सुरक्षित रखना चाहिए, दारैरपि = स्त्रियों से, धनैरपि = धन से भी ।

भावार्थ :–आपत्ति से बचने के लिए धन को सुरक्षित रखना चाहिए तथा स्त्री की रक्षा धन से करनी चाहिए और अपने आप की रक्षा स्त्री और धन दोनों से करनी चाहिए ।

(41)

।। शरीर नाशवान् गुण अविनाशी ।।

शरीरस्य गुणाना च दूरमत्यन्तमन्तरम् ।
शरीरं क्षणविध्वंसि कल्पान्तस्थायिनो गुणाः ।।

शब्दार्थ :– शरीरस्य = शरीर का, गुणाना च = और गुणों का, दूरम् = अधिक, अत्यन्तम् =अतिशय, अन्तरम् = भेद, शरीरं = मानव शरीर, क्षणविध्वंसि = क्षणमात्र में नष्ट होने वाला है, कल्पान्त = सृष्टि के अन्त तक, स्थायिनो = स्थिर रहने वाले, गुणाः = गुण, (होते हैं) ।

भावार्थ :— शरीर और गुणों में महान् भेद है, क्योंकि शरीर तो अकस्मात् क्षणमात्र में नष्ट होने योग्य है और (धर्मादि) गुण तो संसार जब तक है तब तक रहने वाले हैं। अर्थात् गुण शाश्वत रूप से रहते हैं ।

(42)

।। विधि बलवान्।।

शशि दिवाकरयोर्ग्रहपीडनं
गजभुजंगमयोरपि बन्धनम् ।
मतिमताञ्च विलोक्य दरिद्रतां
विधिरहो बलवानिति में मतिः।।

शब्दार्थ :—शशि = चन्द्रमा, दिवाकरयोः = सूर्य को, ग्रहपीडनं = ग्रहपीडा, गजभुजंगमयोरपि = हाथी और सर्प को भी, बन्धनम् = बन्धन, मतिमताञ्च = बुद्धिमानों की भी, विलोक्य = देखकर, दरिद्रतां = दरिद्रता को, विधिरहो = आश्चर्य रूप से भाग्य ही, बलवान् = प्रबल, इति = ऐसी, मे मति : = मेरा बुद्धि (विचार) है।

भावार्थ :—सूर्य चन्द्रमा को भी ग्रहपीड़ा तथा हाथी और सर्प को भी बन्धन में और बुद्धिमानों की भी दरिद्रता देखकर भाग्य ही बलवान् है ऐसा मेरा विचार है । अर्थात् स्वयं के कर्म ही प्राणी को घुमाते रहते हैं ।

(43)

।। सद्गृहस्थ के घर कमी नहीं ।।

तृणानि भूमिरूदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता ।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन।।

शब्दार्थ :—तृणानि = तिनके का आसन, भूमिः =बैठने के लिए जमीन, उदकं = पानी, चतुर्थी च =और चौथी, वाक् सूनृता = सुन्दर वाणी, एतान्यपि = ये (चारों), सतां = सज्जनों के, गेहे = घर में, नोच्छिद्यन्ते = नहीं कम (समाप्त) होते हैं, कदाचन = कभी भी ।

भावार्थ :—बैठने के लिए आसन, बैठने के लिए जगह, पीने के लिए पानी और मीठी मधुर बोली ये चार वस्तुओं की सज्जनों के घर में कभी नहीं आती अर्थात् सज्जन वही है जिनमें ये चार गुण हैं ।

(44)

।। सज्जन, समान व्यवहारी ।।

निर्गुणेस्वपि सत्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः ।
नहि संहरते ज्योत्नां चन्द्रश्चाण्डालवेश्मनः।।

शब्दार्थ :—निर्गुणेस्वपि = गुणहीन, सत्वेषु = प्राणियों पर भी, दयां = कृपा को, कुर्वन्ति =करते हैं, साधवः = सज्जन पुरूष, न = नहीं, हि = निश्चित रूप से, संहरते = खीचता है, ज्योत्सां = चाँदनी को, चन्द्र =चन्द्रमा, चाण्डालवेश्मनः =चाण्डाल (नीच जाति) के घर से ।

भावार्थ :—सज्जन लोग गुणहीन प्राणियों पर भी दया करते हैं । जैसे चन्द्रमा अपनी चाँदनी को चाण्डाल (नीच) के घर से नहीं खींचता है अर्थात् सभी के घर समान रूप से चाँदनी का प्रकाश करता हैं ।

(45)

।। अतिथि को निराश न लौटाएं ।।

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिर्वतते ।
स तस्मै दुष्कृतं दत्वा पुण्यमादाय गच्छति।।

शब्दार्थ :—अतिथि : = आगन्तुक, यस्य = जिसका, भग्नाशो = आशा की पूर्ति नहीं होने पर, गृहात् =घर से, प्रतिनिवर्तते = वापस लौटता है, स = वह, तस्मै = उसके लिए, दुष्कृतं = अपना पाप, दत्वा = देकर, पुण्यमादाय = पुण्य लेकर, गच्छति = जाता है ।

भावार्थ :—जिसके दरवाजे (घर) से अतिथि (याचक) निराश होकर लौटता है वह उसे अपना पाप देकर और पुण्य लेकर जाता है । यह एक देशीय कथन है ।

(46)

।। अनपढ़ के बीच अल्पज्ञ भी शोभित ।।

यत्र विद्वज्जनों नास्ति, श्लाध्यस्तत्राऽल्पधीरपि।
निरस्त पादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते ।।

शब्दार्थ :—यत्र = जहाँ पर, विद्धज्जनों = विद्वान् लोग, नास्ति = नहीं होते, श्लाध्यः =प्रशंसनीय, तत्र = वहां, अल्पधीरपि = कम बुद्धि वाला भी, निरस्तपादपे = विनावृक्ष के, देशे = देश में, एरण्डोऽपि = एरण्डनाम वाला पेड़ भी, द्रुमायते = वृक्ष कहा जाता है।

भावार्थ :—जहाँ विद्वान् लोग नहीं होते हैं वहां कम बुद्धि वाले भी प्रशंसा पा जाते हैं । जैसे जिस देश में वृक्ष नहीं होते हैं वहां एरण्ड नाम का पौधा भी वृक्ष ही कहा जाता है ।

(47)

।। उदार चरित्रियों के लिए संसार अपना ।।

अयं निजः परोवेति गणना लघु चेतसाम् ।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।।

शब्दार्थ :— अयं = यह, निजः = मेरा है, परो = दूसरे का है, वेति = अथवा यह, गणना = (विचार) मानना, लघुचेतसाम् = छोटे मन वालों का (है), उदारचरितानां = उदारचरित वालों का, तु = तो, वसुधैव = सारी धरती, कुटुम्बकम् = अपना परिवार है।

भावार्थ :—यह अपना है और यह पराया है इस प्रकार का विचार छोटे (क्षुद्र) मन वालों का है । उदारचरित वालों के लिए तो सारा संसार अपना परिवार होता है ।

(48)

।। कोई किसी का मित्र शत्रु नहीं ।।

न कश्चित् कस्यचिन्मित्रं न कश्चित् कस्यचित् रिपुः।
व्यवहारेण मित्राणि जायन्ते रिपवस्तथा ।।

शब्दार्थ :—न = नहीं, कश्चित् = कोई, कस्यचिन्मित्रं = किसी का मित्र , न = नहीं, कश्चित् = कोई, कस्यचित् = किसी का, रिपुः = शत्रु है, व्यवहारेण = व्यवहार से ही, मित्राणि = मित्र, जायन्ते = होते है, रिपवः = शत्रु, तथा = और ।

भावार्थ :— कोई किसी का मित्र नहीं है और कोई किसी का शत्रु नहीं है, मित्र और शत्रु व्यवहार से होते हैं।

(49)

।। किसकी कब परीक्षा ।।

आपत्सु मित्रं जानीयात् युद्धे शूरमृणे शुचिम् ।
भार्यां क्षीणेषु वित्तेषु व्यसनेषु च बान्धवान् ।।

शब्दार्थ :– आपत्सु = आपत्ति में, मित्रं = मित्रको, जानीयात् = जानना चाहिए, युद्धे = युद्ध में, शूरम् = वीर को, ऋणे् = ऋण की सम्भावना होने पर, शुचिम् = कपट रहित व्यवहार को, भार्या= पत्नि को, क्षीणेषु = नष्ट होने पर, वित्तेषु = धन के, व्यसनेषु = दुःख में, बांधवान् = बन्धुओं का ।

भावार्थ : आपत्ति में मित्र की, युद्ध में वीर (शूर) की , ऋण लेने पर कपट नहीं करने वाले की, स्त्री की धन नहीं रहने पर, दुःख में बान्धवों की परीक्षा होती है ।

(50)

।। कौन बान्धव ।।

उत्सवे व्यसने चैव दुर्भिक्षे राष्ट्र विप्लवे ।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः ।।

शब्दार्थ :–उत्सवे = समारोह के समय, व्यसने = दुःख के समय, चैव = निश्चित रूप से, दुर्भिक्षे =अकाल पड़ने पर, राष्ट्र विल्पवे = राष्ट्र के संकट के समय, राजद्वारे = न्यायालय में, श्मशाने = शवदाह के समय, च = और, यस्तिष्ठति = जो (साथ देने के लिए) रहता है, स = वह, बान्धवः = बन्धु है ।

भावार्थ :–विवाह आदि उत्सवों में, विपत्ति के समय, अकाल के समय, देश संकट के समय, न्यायालय में साक्ष्य के समय, शवदाह के समय (साथ देने के लिए) जो (उपस्थित) रहता है, वही बान्धव है ।

(51)

।। मौत आने के लक्षण ।।

दीप निर्वाणगन्धञ्च सुहृद् वाक्यमरून्धतीम्।
न जिघ्रन्ति न श्रृण्वन्ति न पश्यन्ति गतायुषः।।

शब्दार्थ :—दीप = दीपक, निर्वाणगन्धञ्च = बुझने का गन्ध, सुहृद् = मित्र, वाक्यम् =वचन, अरून्धतीम् = अरून्धती नामक तारा को न = नहीं, जिघ्रन्ति = सूंघते , न =नहीं, श्रृण्वन्ति =सुनते हैं, न = नहीं, पश्यन्ति =देखते हैं, गतायुषः = बीती आयु वाले।

भावार्थ :— जिनकी आयु समाप्त हो गई होती है उनको दीपक बुझने की गन्ध नहीं आती और मित्र की बात सुनाई नहीं देती तथा अरून्धती तारा दिखाई नहीं देता है ।

(52)

।। शत्रु के प्रति नीति ।।

सुकृतं विष्णुगुप्तस्य मित्राप्तिः भार्गवस्य च ।
बृहस्पतेरविश्वासो नीतिसंधिस्त्रिधा स्मृता ।।

शब्दार्थ :—सुकृतं = उपकार कर देना, विष्णुगुप्तस्य = चाणक्यका, मित्राप्तिः = मित्र बना लेना, भार्गवस्य = शुक्राचार्य का, च = और, बृहस्पतेः = बृहस्पति का, अविश्वासोः = विश्वास नहीं करना, नीति संधिः = नीति का प्रयोग, त्रिधा स्मृता = तीन प्रकार से कहा गया है ।

भावार्थ :— संसार के प्रमुख तीन नीति शास्त्रीयों में चाणक्य का मत है कि शत्रु की भी भलाई कर देनी चाहिए । शुक्राचार्य का मत है कि यदि शत्रु मित्र बनना चाहे तो उसे मित्र भी बना लेना चाहिए । किन्तु बृहस्पति का

कथन है कि विश्वास नहीं करना चाहिए अर्थात् शत्रु का भला भी कर दिया जाये तथा मित्र भी उसे बना लिया जाये किन्तु विश्वास कभी नहीं करे।

(53)

।। दुर्जन की संगति कथमपि अनुचित ।।

दुर्जनेन समं सख्यं वैरं चापि न कारयेत् ।
उष्णो दहति चाँगारः शीतः कृष्णायते करम्।।

शब्दार्थ :–दुर्जनेन = दुर्जन के, समं = साथ, सख्यं = मित्रता, वैर चापि =और वैर भी, न = नहीं, कारयेत् = करे, उष्णो = गरम, दहति = जलाता है, अंगारः = आग का गोला, शीतः = ठंडा होने पर, कृष्णायते = काला करता है, करम् = हाथ को ।

भावार्थ :– दुष्ट व्यक्ति के साथ मित्रता और वैर भी नहीं करे, क्योंकि जैसे आग गरम होने पर जलाती है तथा ठंडी होने पर हाथ काला करती है उसी प्रकार दुर्जन की स्थिति है ।

(54)

।। मच्छर, समदुष्ट लक्षण ।।

प्राक् पादयोः पतति खादति पृष्टमांसं ।
कर्णे कलं किमपि रौति शनैर्विचित्रम् ।।
छिद्रं निरूप्य सहसा प्रविशत्यशङ्कः ।
सर्वं खलस्य चरितं मशकः करोति।।

शब्दार्थ :–प्राक् = पहले, पादयोः = पैरों पर, पतति = गिरता है, खादति =खाता है, पृष्टमांसं = पीठ के मांस को, कर्णे = कान में, कलं = सुन्दर, किमपि = कुछ भी, रौति = शब्द करता है, शनैः = धीरे–धीरे,

विचित्रम् = विचित्र, छिद्रं = छेद (अवसर), निरूप्य = देखकर, सहसा = अचानक, प्रविशत्यशंकः = निर्भय होकर प्रवेश करता है, सर्वं = सभी, खलस्य = दुष्ट के, चरितं = चरित्र को, मशकः = मच्छर, करोति।

भावार्थ :– पहले पैरों पर गिरता है फिर पीठ का मांस खाता है, पुनः कान में कुछ कहता है (गुनगुनाता है) उसके बाद छिद्र को देखकर, साहस पूर्वक निर्भय होकर प्रविष्ट हो जाता है इस प्रकार दुष्ट के सम्पूर्ण चरित्र को मशक (मच्छर.) करता है ।

(55)

।। गलत प्राणी पर विश्वास हानिकारक ।।

मार्जारो महिषो मेषः काकः कापुरुषस्तथा ।
विश्वासात् प्रभवन्त्येते विश्वासस्तत्र नो हितः।।

शब्दार्थ :– मार्जारो =बिलाव, महिषो =भैसा, मेषः = भेड़, काकः=कौआ, तथा=और, कापुरुषः= कायरपुरूष, एते=ये सभी, विश्वासात् = विश्वास करने से, प्रभवन्ति =प्रभावकारी (होते हैं), विश्वासः =विश्वास, तत्र =उनमें, नो = नहीं, हितः = हितकर है ।

भावार्थ :–बिलाव, भैसा, भेड़ा, कौआ तथा कायर पुरूष विश्वास करने से ही प्रभावकारी (अनिष्टकारी) होते हैं इसलिए इनपर विश्वास नहीं करना चाहिए ।

(56)

।। शत्रु के मित्र होने पर भी सावधान ।।

शत्रुणा नहि सन्दध्यात् संश्लिष्टेनाऽपि संधिना
सुतप्तमपि पानीयं शमयत्येव पावकम् ।।

शब्दार्थ :– शत्रुणा नहि = शत्रु से नहीं, सन्दध्यात् = संधि करे, संश्लिष्टेनाऽपि = सुदृढ़ रूप से भी, संधिना =संधि के द्वारा, सुतप्तमपि = तपा हुआ भी, पानीयं = जल, शमयत्येव = बुझा देता है, पावकम् = अग्नि को ।

भावार्थ :—सुदृढ़ संधि करने पर भी शत्रु के साथ मेल (विश्वास) न करे क्यों कि तपा हुआ भी जल पानी को बुझा देता है ।

(57)

।। दुष्ट की विद्या भी हानिकारक ।।

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययाऽलतोऽपि (वा) सन्।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयंकरः ।।

शब्दार्थ :—दुर्जनः = दुष्ट व्यक्ति, परिहर्तव्यः = त्याग देना चाहिए, विद्ययाऽलृतोऽपि = विद्या से युक्त भी, सन् =होने पर, मणिना = मणि से, भूषितः = विभूषित, सर्पः = सर्प, किमसौ = क्या यह, न = नहीं, भयंकर होता है ।

भावार्थ :—दुष्ट जन विद्या से युक्त होने पर भी त्याग देना चाहिए, जैसे मणि से युक्त होने पर भी सर्प भयंकर ही होता है ।

(58)

।। किसका कैसे मिलाप हो ।।

द्रवत्वात् सर्वलोहानां निमित्तात् मृगपक्षिणाम् ।
भयाल्लोभाच्च मूर्खाणां संगतं दर्शनात् सताम्।।

शब्दार्थ :–द्रवत्वात्=पिघल जाने से, सर्वलोहानां = सभी लोहे आदि धातुओं का, निमित्तात् = वहाने से (भोजन या आवास के), मृग– पक्षिणाम् = मृग पक्षियों के, भयाल्लो–भाच्च= भय और लोभ से, मूर्खाणां = मूर्खों का, संगतं = मिलन, दर्शनात् = दर्शन से, सताम् = सज्जनों के।

भावार्थ :–सभी लौह (पदार्थ) धातुओं का, पिघलने के कारण, तथा मृग पक्षियों का (भोजन आवास के) निमित्त (बहाने) से, और मूर्खों का भय तथा लोभ से, एवं साधुजनों का दर्शन मात्र से मेल मिलाप होता है।

(59)

।। सच्चे मित्र के गुण ।।

शुचित्वं त्यागिता शोर्यं सामान्यं सुखदुःखयोः।
दाक्षिण्य चाऽनुरक्तिश्च सत्यता च सुहृद गुणः।।

शब्दार्थ :–शुचित्वं = पवित्रता, त्यागिता = त्यागशीलता, शौर्यं = वीरता, सामान्यं = समान होना, सुखदुःखयोः = सुखदुःख में, दाक्षिण्य चानुरक्तिश्च = उदारता एवं अनुराग, सत्यता = सच्चाई, च = और, सुहृदगुणाः = मित्र के गुण हैं ।

भावार्थ :–पवित्रता, दानशीलता, शूरता, सुख दुःख में समान होना, उदारता, अनुराग, और सच्चाई मित्र के गुण हैं ।

(60)

।।मीठी वाणी चन्दन से भी अधिक शीतल।।

घर्मार्त न तथा सुशीतलजलैः स्नानं न मुक्तावली ।
न श्रीखण्डविलेपनं सुखयति प्रत्यंगमप्यर्पितम् ।।

प्रीत्यै सज्जनभाषितं प्रभवति प्रायोयथा चेतस : ।
सद्युक्त्या च परिस्कृतं सुकृतिनामाकृष्टिमन्त्रोपमम् ।।

शब्दार्थ :—घर्मार्तं = गर्मी से दुःखी,(को) न = नहि, तथा = और, सुशीतल जलैः = अच्छे शीतल जल से, स्नानं = स्नान करना, न = नहीं, मुक्तावली= मोती की माला, न = नही, श्रीखण्डविलेपनं = चन्दन का लेपन, सुखयति = सुख देता है, प्रत्यंगमप्यर्पितम् = प्रत्येक अंगों में लगाया हुआ, प्रीत्यै = प्रीति के लिए, सज्जनभाषितं = सज्जनों की बोली, प्रभवति = प्रभावशाली होता है, प्रायः = अधिकतर, यथा = जिस प्रकार, चेतसः = मन को, सद्युक्त्या = अच्छी युक्ति से, च = निश्चित रूप से, परिष्कृतं = स्पष्ट किया हुआ, सुकृतिनां = पुण्यशाली लोगों का, आकृष्टिः = आकर्षण, मंत्रोपमम् = मंत्र के समान ।

भावार्थ :—सुन्दर नीतिमय युक्तियों से स्पष्ट अर्थ वाला, वशीकरण मंत्र के समान, पुण्यशाली सज्जनों का वचन, जिनता चित्त को प्रसन्न करता है अर्थात् शान्ति प्रदान करता है उतना गर्मी से तपे हुए को शीतल जल का स्नान, मोतियों का हार, तथा सभी अंगों में लगाया गया चन्दन भी शान्ति प्रदान नहीं करता है ।

(61)

।। मित्र के दोष ।।

रहस्य भेदो या चा च नैष्ठुर्यं चलचित्तता ।
क्रोधो निःसत्यता द्यूतमेतत् मित्रस्य दूषणम् ।।

शब्दार्थ :—रहस्य = गुप्त बात का, भेदः = प्रकट करना, या चा = धन आदि मांगना, च = और, नैष्ठुर्यं = निर्दयता, चलचित्तता = मन का चंचल (अव्यवस्थित) होना, क्रोधो = गुस्सा (कोप) करना, निःसत्यता = असत्य बोलना, द्यूतम् = जुआ खेलना, एतत् = यह, मित्रस्य = मित्र का, दूषणम् = दोष है, ।

भावार्थ :—गुप्त बात को प्रगट कर देना, धन आदि मांगना, मन का चंचल होना, क्रोध करना, झूठ बोलना, जुआ खेलना, निष्ठुरता रखना, मित्र के दोष हैं । अर्थात् ये सात दोष जिसमें हों उसे मित्र नहीं बनाना चाहिए ।

(62)

।। स्वच्छ, दुष्ट मन का व्यवहार ।।

अन्यथैव हि सौहार्दं भवेत् स्वच्छान्तरात्मनः ।
प्रवर्ततेऽन्यथा वाणी शाठ्योपहतचेतसः ।।

शब्दार्थ :—अन्यथैव = अन्य प्रकार से ही, हि = निश्चय, सौहार्द = मित्रता, भवेत् = होता है, स्वच्छान्तरात्मनः =स्वच्छ मन वाले का, प्रवर्तते = होता है, अन्यथा = अन्य प्रकार का, वाणी = वचन (बोलना), शाठ्योपहतचेतसः = दुष्टता से युक्त मन वाले का,।

भावार्थ :—स्वच्छ मन वाले की मित्रता उत्तम भाव से होती है किन्तु दुष्ट मन वाले व्यक्ति की वाणी ही अलग ढंग से निकलती है ।

(63)

।। महात्मा, दुरात्मा के लक्षण ।।

मनस्यन्यद् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम्।
मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् ।।

शब्दार्थ :—मनस्यन्यद् = मन में दूसरा (अन्य), वचस्यन्यत् = वचन से दूसरा, कर्मण्यन्यत् = कर्म से दूसरा, (आचरण), दुरात्मनाम् = दुष्ट आत्मा (मन) वाले का (होता है), मनस्येकं = मन से एक, वचस्येकं = वचन से एक, कर्मण्येकं = कर्म से एक, महात्मनाम्= महात्माओं का (व्यवहार होता है),।

भावार्थ :—दुष्ट व्यक्ति के मन में कुछ और होता है तथा करता कुछ और ही है तथा बोलता कुछ दूसरा ही है किन्तु महात्मा (साधु) जन जो कहते हैं वही करते भी हैं तथा मन में भी वही बात रहती है । अर्थात् दुष्ट और सज्जन व्यक्ति के मन कर्म वचन तीनों में महान् अन्तर होता है ।

(64)

।। स्थानभ्रष्ट, सुशोभित नहीं ।।

स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते दन्ताः केशा नखा नराः।
इति विज्ञाय मतिमान् स्वस्थानं न परित्यजेत् ।।

शब्दार्थ :—स्थानभ्रष्टाः = अपने उचित स्थान से पतित हो जाने पर, न = नही, शोभन्ते = शोभा पाते हैं, दन्ताः = दाँत, केशाः = बाल, नखाः = नाखून, नराः = मनुष्य, इति = यह, विज्ञाय = जानकर, मतिमान् = बुद्धिमान् , स्वस्थानं = अपने स्थान को, न = नहीं, परित्यजेत् = त्यागना चाहिए।

भावार्थ :—दाँत, केश, नख और नर अपने स्थान से भ्रष्ट हो जाने पर सुशोभित नहीं होते हैं यह जानकर बुद्धिमान व्यक्ति को अपना स्थान नहीं त्यागना चाहिए ।

(65)

।। निवास त्यागी कौन प्रभावशाली ।।

स्थानमुत्सृज्य गच्छन्ति सिंहाः सत्पुरूषा गजाः।
तत्रैव निधनं यान्ति काकाः कापुरूषा मृगाः ।।

शब्दार्थ :—स्थानमुत्सृज्य = स्थान को (निवास को) त्याग करके, गच्छन्ति = चले जाते हैं, सिंहाः = केसरी (शेर), सत्पुरूषा : = साधुजन, गजाः = हाथी, तत्रैव = अपने निवास पर ही, निधनं = मृत्यु को, यान्ति = प्राप्त करते हैं, काकाः = कौवे, कापुरूषाः = कायर पुरूष, मृगाः = मृग।

भावार्थ :—शेर (सिंह) साधु (सत्पुरूष) लोग तथा हाथी, अपने निवास को छोड़कर अन्यत्र जाकर जीविका प्राप्त करते हैं किन्तु कौवे तथा कायर लोग और मृग जीविका नहीं मिलने पर भी अपने स्थान को नहीं त्यागते हैं (और) अपने स्थान में ही मरते है ।

(66)

।। आगे देखे, फिर बढ़े ।।

चलत्येकेन पादेन तिष्ठत्येकेन बुद्धिमान् ।
नाऽसमीक्ष्य परं स्थानं पूर्वमायतनं त्यजेत् ।।

शब्दार्थ :—चलत्येकेन = चलता है एक, पादेन = पैर से, तिष्ठत्येकेन = स्थित (रहता है) एक से, बुद्धिमान् = चतुर पुरूष (जन या प्राणी), नाऽसमीक्ष्य = बिना विचार किये नहीं,, परं = अगला, स्थानं = लक्ष्य को, पूर्वमायतनं = पूर्व का उपलब्ध स्थान, त्यजेत् = त्यागना चाहिए।

भावार्थ :—बुद्धिमान् पुरूष एक पैर से चलता है तथा एक पैर से स्थित रहता है इसलिए प्राप्त करने योग्य स्थान की ठीक ठीक परीक्षा किए बिना प्रथम स्थान नहीं छोड़ना चाहिए।

(67)

।। कौन से देश में नहीं रहना ।।

यस्मिन् देशे न सम्मानो न वृत्तिर्नच बान्धवः ।
न च विद्यागमः कश्चित् तं देशं परिवर्जयेत् ।।

शब्दार्थ :—यस्मिन् = जिस, देशे = देश में, न = नहीं , सम्मानो = आदर, न = नहीं, वृत्तिः = आहार (व्यवस्था), न च = और नहीं, बान्धवाः = भाई बन्धु, न च = और नहीं, विद्यागमः = विद्या की प्राप्ति, कश्चित् = कोई, तं = उस, देशं = देश को, परिवर्जयेत् = त्याग देना चाहिए ।

भावार्थ :—जिस देश में सम्मान (आदर) और जीविका, तथा बान्धव एवं किसी विद्या की (इलम की) प्राप्ति न हो उस देश को त्याग देना चाहिए।

(68)

।। कहाँ नहीं रहना ? ।।

धनिकः श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यस्तु पंचमः ।
प च यत्र न विद्यन्ते तत्र वासं न कारयेत् ।।

शब्दार्थ :—धनिकः = धनवान्, श्रोत्रियः = विद्या, जन्म तथा संस्कार , से ब्राह्मण, राजा = प्रजा की रक्षा करने वाला, नदी = सदा जल से पूर्ण रहने वाली नदी, वैद्यस्तु = और चिकित्सा करने वाला, प चमः = पाँचवा,

प च = पाँच, यत्र = जहाँ, न = नहीं, विद्यन्ते = होते हैं, तत्र = वहाँ, वासं = निवास, न = नहीं, कारयेत् = करना चाहिए ।

भावार्थ :—जहाँ पर धनवान् (लोग) और जन्म से विद्या से संस्कार से युक्त ब्राह्मण तथा प्रजा की रक्षा करने वाला राजा एवं नदी और चिकित्सक, ये पांच न हों उस स्थान पर निवास नहीं करना चाहिए ।

(69)

।। नहीं रहने योग्य स्थान ।।

लोक यात्रा भयं लज्जा दाक्षिण्यं त्यागशीलता।
यत्र प च न विद्यन्ते न कुर्यात् तत्र संस्थितिम्।।

शब्दार्थ :— लोकयात्रा = जीविका, भयं = शासन का भय, लज्जा = बुरे कर्मों के प्रति लज्जा, दाक्षिण्यं = उदारता, त्यागशीलता = दान शीलता, यत्र = जहाँ, प च = पाँच, न =नहीं, विद्यन्ते =होते हैं, न = नहीं, कुर्यात् =करे, तत्र = वहां, संस्थितिम् = निवास को।

भावार्थ :— जहाँ पर लोगों में जीविका, शासन का भय, बुरे कार्यों के प्रति लज्जा, उदारता, दान शीलता ये पाँच (जहां पर) न होवे वहां पर निवास नहीं करना चाहिए ।

(70)

।। पराक्रमी के लिए सारा जहान अपना ।।

को वीरस्य मनस्विनः स्व विषयः, को वा विदेशः स्मृतः।
यं देशं श्रयते तमेव कुरुते, वाहु प्रतापार्जितम् ।।

शब्दार्थ :— को = क्या, वीरस्य = वीर, मनस्विनः = स्वाभिमानी के लिए, स्वविषयः = अपना विषय (होता हैं), को = क्या, वा = अथवा, विदेशः = पराया देश, स्मृतः = होता है, यं देशं = जिस देश को, श्रयते

= अपना आश्रय बनाता है, तमेव = उसी को, कुरूते = करता है, वाहु = बाहों के, प्रतापार्जितम् = प्रताप से जीता हुआ ।

भावार्थ :–स्वाभिमानी योग्य पुरूष के लिए अपना कोई विषय (स्थान) नहीं होता है तथा कोई देश पराया देश नहीं होता है वह जिस–जिस देश का आश्रय लेता है उसी को अपने बाहु के प्रताप से अनुकूल कर लेता है ।

(71)

।। प्रेमी व्यक्ति के लक्षण ।।

मुखं प्रसन्नं विमला च दृष्टिः कथाऽनुरागो मधुरा च वाणी ।
स्नेहोऽधिकः सम्भ्रमदर्शन च सदानुरक्तस्य जनस्य लक्ष्म ।।

शब्दार्थ :–मुखं = मुख, प्रसन्नं = प्रसन्न, विमला = स्वच्छ, दृष्टिः = देखना, कथानुरागो = बात सुनने में रूचि, मधुरा = सरस, च = और, वाणी = बोली, स्नेहोऽधिकः = प्रेम की अधिकता, सम्भ्रमदर्शन च = बार बार देखना, सदानुरक्तस्य =हमेशा प्रेम रखने वाले का, लक्ष्म = लक्षण होता है।

भावार्थ :–मुख पर प्रसन्नता, प्रेमभरी दृष्टि, बातों में रूचि, वाणी में मधुरता, अत्यन्त स्नेह, बार–बार देखना, ये छह चिन्ह प्रेंमी पुरूष में सदा रहते हैं ।

(72)

।। अपने प्रति उपेक्षित के लक्षण ।।

अदृष्टिदानं कृतपूर्वनाशनममाननं दुश्चरितानुकीर्तनम् ।
कथाप्रंसगेनच नाम विस्मृतिर्विरक्तभावस्यजनस्य लक्षणम्।।

शब्दार्थ :— अदृष्टिदानं = न देखना, कृतपूर्वनाशनम् = किये हुए उपकार को न मानना, अमाननं = मान नहीं देना, दुश्चरितानुकीर्तनम् = दुराचरण को प्रकाशित करना, कथा प्रसंगेन = प्रसंग वश चर्चा में, च = और, नामविस्मृतिः = नाम को भूल जाना, विरक्तभावस्य = विरक्त भाव वाले, जनस्य = यक्ति का, लक्षणम् = लक्षण होता हैं।

भावार्थ :—(सामने होने पर भी) नहीं देखना, किये हुए उपकार को न मानना तथा सम्मान नहीं देना और दुराचरण को प्रकाशित करना कथा प्रसंगों पर नाम भूल जाना, अपनें प्रति उपेक्षा रखने वाले व्यक्ति के यह लक्षण होते हैं ।

(73)

।। धन ही सब कुछ ? ।।

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः।
यस्यार्थाः स पुमान् लोके यस्यार्थः स हि पण्डितः।।

शब्दार्थ :—यस्यार्थास्तस्य = जिसके पास पैसा होता है उसी के, मित्राणि = मित्र होते हैं, यस्यार्थास्तस्य = जिसके पास पैसा होता है उसके ही, बान्धवाः = बन्धु होते हैं, यस्यार्थाः = जिसके पास पैसा होता है, स = वह, पुमान् = पुरूष, लोके = लोक में, यस्यार्थाः = जिसके पास पैसा होता है, स = वह, हि = निश्चित, पण्डितः = बुद्धिमान् माना जाता है ।

भावार्थ :— जिसके पास पैसा होता है वही संसार में मित्रों वाला और बन्धुओं वाला होता है तथा वही संसार में पुरूष तथा बुद्धिमान् माना जाता है । यह आधुनिक दुनियाँ की रीत है।

(74)

।। धनाभाव सभी दुःखों का कारण ।।

अपुत्रस्य गृहं शून्यं सन्मित्ररहितस्य च ।
मूर्खस्य च दिशः शून्याः सर्वशून्या दरिद्रता।।

शब्दार्थ :—अपुत्रस्य = पुत्रहीन का, गृहं = घर, शून्यं = सूना होता है, सन्मित्ररहितस्य = अच्छे मित्र से रहित, मूर्खस्य = मूर्ख की, च = और, दिशः = दिशाएँ, शून्याः = शून्य होती हैं, सर्वशून्या = सभी प्रकार की शून्यता (अभाव) वाली, दरिद्रता = गरीबी होती है ।

भावार्थ :—पुत्र के बिना घर सूना होता है और अच्छे मित्र से रहित मूर्ख की सभी दिशाएँ शून्य होती हैं, किन्तु दरिद्र व्यक्ति को सभी तरह के शून्यता (अभाव) ही होती है । यह किसी अपेक्षा से कथन है ।

(75)

।। धनी के निर्धन बनने पर ।।

तानीन्द्रियाण्यविकलानि तदेव नाम,
सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव ।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरूष : स एव,
ह्यन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत्।।

शब्दार्थ :—तानीन्द्रियाण्यविकलानि = वे ही दोष रहित इन्द्रियाँ, तदेव = वही, नाम = नाम है, सा = वही, बुद्धिरप्रतिहता = तीक्ष्ण (तेज) बुद्धि, वचनं = वाणी, तदेव = वही, अर्थोष्मणा = अर्थरूपी तेज के, विरहितः = अभाव में, पुरूषः = पुरूष (व्यक्ति), स एव = वही है, ह्यन्यः = अन्य, क्षणेन = क्षण मात्र में, भवतीति = होता है, विचित्रमेतत् =यह विचित्र है ।

भावार्थ :—धनवान् व्यक्ति की वही सतेज इन्द्रियाँ तथा वही नाम वही तीक्ष्ण बुद्धि, वही वचन, किन्तु अर्थ रूपी तेज से हीन होने पर उसी व्यक्ति की क्षण मात्र में ही अन्य स्थिति हो जाती है । यह विचित्र स्थिति है । अर्थात् धन समाप्त होने पर सारी स्थिति बदल जाती है ।

(76)

।। कौन किसका आदरणीय है ।।

गुरूरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरूः ।
स्त्रीणां पतिः गुरूरव्यातः, सर्वेषामतिथिः गुरूः ।।

शब्दार्थ :— गुरूः = श्रेष्ठ है, अग्नि = वह्नि, द्विजातीनां = ब्राह्मणों के लिए, वर्णानां = सभी वर्णों के लिए, ब्राह्मणो = ब्राह्मण, गुरू श्रेष्ठ है, स्त्रीणां = स्त्रियों के लिए, पतिः=अपना पति ही, गुरूः = श्रेष्ठ (आदरणीय), ख्यातः=कहा गया है, सर्वेषाम् = सब के लिए, अतिथिः = आया हुआ, (घर में आया हुआ) गुरूः = श्रेष्ठ है।

भावार्थ :— ब्राह्मणों के लिए अग्नि, सभी वर्णों के लिए ब्राह्मण और स्त्री जनों के लिए अपना पति, और सभी के लिए घर में आया हुआ अतिथि अत्यन्त आदरणीय तथा श्रेष्ठ होता है ।

(77)

।। किस स्थिति में भी क्या ठीक नहीं ।।

वरं मौनं कार्यं न च वचनमुक्तं यदनृतं ।
वरं क्लैब्यं पुंसां न च परकलत्राऽभिगमनम् ।।
वरं प्राण त्यागो न च पिशुनवाक्येष्वभिरुचिः
वरं भिक्षाशित्वं न च परधनाऽऽस्वादनसुखम् ।।

शब्दार्थ :—वरं = अच्छा (श्रेष्ठ) है, मौनं = मौन, कार्यं = रहना, न च = और नहीं, वचनमुक्तं = कहा हुआ वचन, यदनृतं = जो झूठा (वचन), वरं क्लैब्यं = नपुंसक होना ठीक है, पुंसां = व्यक्तियों का, न च = और नहीं, परकलत्राभिगमनम् = दूसरे स्त्री के साथ गमन करना, वरं = श्रेष्ठ है, प्राणत्यागो = प्राण का त्याग करना, न च = और नहीं, पिशुनवाक्येष्वभिरूचिः = झूठी बातों में रूचि, वरं = श्रेष्ठ, भिक्षाशित्वं = भिक्षा मांगकर खाना, न च = किन्तु नहीं (श्रेष्ठ है), परधनाऽऽस्वादनसुखम् = दूसरे के धन का उपभोग करना।

भावार्थ :—मौन रहना ठीक है किन्तु असत्य बोलना ठीक नहीं है, नपुंसक होना ठीक है किन्तु दूसरे की स्त्री का उपभोग ठीक नहीं है, प्राण त्याग देना ठीक है किन्तु झूठी बातों मे रूचि रखना ठीक नहीं है, भिक्षा मांग कर भोजन कर लेना ठीक है किन्तु दूसरे के धन का उपभोग करना ठीक नहीं है ।

(78)

।। इच्छा दुःखकारी ।।

लोभेन बुद्धिश्चलति लोभो जनयते तृषाम् ।
तृषार्तो दुःखमाप्नोति परत्रेह च मानव : ।।

शब्दार्थ :—लोभेन = लोभ से, बुद्धिश्चलति = बुद्धि चलती है, लोभो = लोभ (लालच) जनयते = उत्पन्न करता है, तृषाम् = इच्छा को, तृषार्तो = इच्छा वाला व्यक्ति, दुःखमाप्नोति = दुःख प्राप्त करता है, परत्रेह = इस लोक तथा परलोक में, च = और, मानवः = मनुष्य।

भावार्थ :—लोभ से बुद्धि चलायमान होती है तथा लोभ से ही उत्कट (अत्यन्त) इच्छा होती है और इच्छाओं के कारण ही मनुष्य इस संसार में तथा परलोक में दुःख प्राप्त करता है ।

(79)

।। आपत्तियाँ किस पर आती है ।।

धनलुब्धो ह्यसन्तुष्टोऽनियतात्माऽजितेन्द्रिय : ।
सर्वा एवापदस्तस्य यस्य तुष्टं न मानसम् ।।

शब्दार्थ :–धनलुब्धो = धन के लोभी, ह्यसन्तुष्टो = संतोष नहीं रखने वाले, अनियतात्मा = सयंम रहित, अजितेन्द्रियः = जो जितेन्द्रिय नहीं है, सर्वा =सभी,एव=ही, आपदः=आपत्तियाँ, तस्य=उसको, यस्य = जिसका, तुष्टं न = संतुष्ट नहीं है, मानसम् = मन।

भावार्थ :– जो धन का लोभी हो तथा असन्तुष्ट एवं संयम से रहित हो और जितेन्द्रिय न हो ऐसे पुरूष को तथा जिसका मन सन्तुष्ट नहीं रहता हो को सभी आपत्तियाँ आती है।

(80)

।। धैर्य, सुख, स्नेह, बुद्धिमानी क्या ? ।।

को धर्मो ? भूतदया, कि सौख्यं ? नित्यमरोगिता जगति।
कः स्नेहः ? सद्भावः किं पाण्डित्यं ? परिच्छेद :।।

शब्दार्थ :–को = क्या, धर्मो = धर्म है, भूतदया = प्राणियों पर दया करना, किं =क्या सौख्यं = सुख है, नित्यमरोगिता = हमेशा स्वस्थ रहना, जगति = संसार में, कः = क्या, स्नेहः = स्नेह (प्रेम) है, सद्भावः = सद्भावना, किं = क्या, पाण्डित्यं = बुद्धिमानी है, परिच्छेदः = उचित अनुचित का ज्ञान।

भावार्थ :– धर्म क्या है? प्राणियों पर दया करना, सुख क्या है ? हमेशा स्वस्थ रहना, संसार मे स्नेह क्या है ? सद् भावना रखना, बुद्धिमानी क्या है ? उचित अनुचित का ज्ञान होना ।

(81)

।। अपनी आत्मा की भलाई के लिए ।।

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्।।

शब्दार्थ :–त्यजेदेकं = एक को त्याग देवे, कुलस्यार्थे = कुल के लिए, ग्रामस्यार्थे = ग्राम के लिए, कुलं = कुल को, त्यजेत् = त्याग देवे, ग्रामं = गाँव को, जनपदस्यार्थे = जनपद के लिए, आत्मार्थे = अपनी आत्मा के कल्याण के लिए, पृथिवीं = धरती (अर्थात् पूरे संसार को), त्यजेत् = त्याग देवे।

भावार्थ :– किसी एक व्यक्ति या वस्तु के त्यागने से कुल की भलाई हो तो यहं त्याग अवश्य करना चाहिए इसी प्रकार गाँव की भलाई के लिए कुल को तथा जनपद की भलाई के लिए गाँव को तथा अपनी आत्मा की भलाई (कल्याण) हेतु पूरे संसार को भी त्यागना पड़े तो अवश्य त्याग देना चाहिए।

(82)

।। धर्म की श्रेष्ठता।।

अर्थाः पादरजोपमाः गिरिणदी वेगोपमं यौवनम्
आयुष्यं जलबिन्दु लोल चपलं फेनोपमं जीवनम्।।
धर्मं यो न करोति निश्चलमतिः स्वर्गाऽर्गलोद्घाटनम्।
पश्चात्ताप हतो जरापरिणतः शोकाग्निना दह्यते।।

शब्दार्थ :— अर्थाः = धन, पादरजोपमाः = पैर की धूलि के समान है, गिरिणदीवेगोपमं = पर्वत की नदी के वेग के समान, यौवनं = जवानी है, आयुष्यं = आयु , जलबिन्दुलोलचपलं = जल की बूंद के समान क्षण भंगुर है, फेनोपमं = फेन के समान, जीवनं = जीवन है, धर्मं = धर्म को, यो न = जो नहीं, करोति = करता है, निश्चलमतिः = स्थिरमति वाला, स्वर्गाऽर्गलोद्घाटनम्= स्वर्ग के दरवाजे को खोलने वाला, पश्चात्तापहतो=पश्चात्ताप से युक्त होकर, जरापरिणतः = वृद्ध होने पर, शोकाग्निना = शोक की अग्नि से, दह्यते = जलता है।

भावार्थ :—धन पैर की धूलि के समान है, जवानी पहाड़ी नदी के वेग के समान है, आयु जल की बूंद के समान है, जीवन फेन के समान है,(ऐसा जानकर) जो व्यक्ति स्थिर बुद्धि से स्वर्ग के दावाजे को खोलने वाले धर्म को नहीं करता है बाद में वृद्धावस्था आने पर पश्चात्ताप करता हुआ शोक की अग्नि से जलता है ।

(83)

।। धन, बल, शास्त्र, आत्मा कौन सी लाभदायक।।

धनेन किं ? यो न ददाति नाऽश्नुते।
बलेन किं ? यश्च रिपून् न बाधते।
श्रुतेन किं ? यो न च धर्ममाचरेत् ।
किमात्मना ? यो न जितेन्द्रियो भवेत्।।

शब्दार्थ :—धनेन किं = धन से क्या (लाभ), यो न = जो नहीं, ददाति = देता है, नाऽश्नुते = न उपभोग करता है, बलेन किं = बल के क्या (लाभ), यश्च = जो निश्चय ही, रिपून् = शत्रुओं को, न = नहीं, बाधते = कष्ट देवे, श्रुतेन किं = शास्त्र ज्ञान से क्या (लाभ), यो न = जो नहीं, च = निश्चय धर्ममाचरेत् = धर्म का आचरण करे, किमात्मना = आत्मा

से क्या (लाभ), यो न = जो नहीं, जितेन्दियो = जितेन्द्रिय, भवेत् = होवे।

भावार्थ :– उस धन से क्या लाभ जो न तो किसी को दिया जाय और न स्वयं उसका भोग किया जाय, उस बल से क्या लाभ जिसने शत्रुओं को पराजित नहीं किया। उस शास्त्र ज्ञान से क्या लाभ जिसके द्वारा धर्म का आचरण न होवे, उस आत्मा से क्या लाभ जो जितेन्द्रिय न बन सके।

(84)

।। कृपण का धन ।।

न देवाय न विप्राय न बन्धुभ्यो न चात्मने ।
कृपणस्य धनं याति वह्नितस्कर पार्थिवै :।।

शब्दार्थ :–न = नहीं, देवाय = देवता के लिए, न = नहीं, विप्राय = ब्राह्मण के लिए, न = नहीं, बन्धुभ्यो = बान्धवों के लिए, न च = और नहीं, आत्मने = अपने लिए (ऐसा), कृपणस्य = कंजूस का, धनं = धन, याति = नाश को प्राप्त होता है, वह्नितस्करपार्थिवैः = अग्नि चोर राजा से।

भावार्थ :–जिस कंजूस व्यक्ति का धन,न देवताओं के लिए न ब्राह्मणों के लिए, न अपने लिए, खर्च होता है वह धन अग्नि, चोर, या राजा के द्वारा नष्ट होता है।

(85)

।। चार दुर्लभ बातें ।।

दानं प्रियवाक्सहितं ज्ञानमगर्वं क्षमान्वितं शौर्यम्।
त्यागसहितं च वित्तं दुर्लभमेतच्चतुर्भद्रम् ।।

शब्दार्थ :– दानं = देना, प्रियवाक्सहितं = मीठी बोली के साथ, ज्ञानमगर्वं = ज्ञान अभिमान रहित, क्षमान्वितं =क्षमा से युक्त, शौर्यम् = शूरता , त्यागसहितं = त्याग से युक्त, च = और, वित्तं = धन, दुर्लभमेतच्चतुर्भद्रम् = ये चार कल्याणकारी वस्तु दुर्लभ होती है ।

भावार्थ :– मीठी (मधुर) बोली से युक्त दान, अभिमान रहित ज्ञान, क्षमायुक्त वीरता, त्याग युक्त धन, ये चारों उत्तम पदार्थ दुर्लभ हैं ।

(86)

।। स्थिर बुद्धि वाले की योग्यता ।।

नाप्राप्यमभिवा छन्ति नष्टं नेच्छन्ति शोचितुम् ।
आपत्स्वपि न मुह्यन्ति नराः पण्डितबुद्धयः।।

शब्दार्थ :–न–अप्राप्यम्–अभिवा छन्ति = अप्राप्य वस्तु की इच्छा नहीं करते हैं, नष्टं = नष्ट हुए को, नेच्छन्ति = नहीं चाहते हैं, शोचितुम् = शोक करना, आपत्स्वपि = आपत्ति में भी, न = नहीं, मुह्यन्ति = मोह करते हैं, नराः = मनुष्य, पण्डित–बुद्धयः = स्थिर बुद्धि वाले।

भावार्थ :–स्थिर बुद्धि वाले मनुष्य अप्राप्य वस्तु की इच्छा नहीं करते हैं तथा नष्ट वस्तु के लिए शोक नहीं करते हैं । और आपत्ति में भी अधीर नहीं होते हैं।

(87)

।। क्रिया के बिना ज्ञान भार है ।।

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खाः,
यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान् ।

सुचिन्तित चौषधमातुराणाम् ,
न नाममात्रेण करोत्यरोगम् ।।

शब्दार्थ :—शास्त्राण्यधीत्यापि = शास्त्र पढ़कर भी,, भवन्ति = होते हैं, मूर्खाः = मूर्ख जन, यस्तु = जो व्यक्ति, क्रियावान् = क्रिया (कर्त्तव्य) युक्त है , पुरूषः = व्यक्ति, स = वह, विद्वान् = वास्तव में बुद्धिमान् है, सुचिन्तितम्—औषधम्—आतुराणाम् = खूब याद (विचार) किया हुआ औषध (दवा) रोगी को, न = नहीं,, नाममात्रेण = नाम स्मरण मात्र से, करोत्यरोगम् = करता है निरोग ।

भावार्थ :—शास्त्रों को पढ़ने वाले भी मूर्ख देखे गये हैं, अर्थात् शास्त्रज्ञान रखने वाले भी मूर्ख होते हैं जो मनुष्य शास्त्र के अनुसार चारित्र्य का पालन करते हैं वही वास्तव में विद्वान् होते हैं । खूब याद करने पर भी औषध का नाम रोगी के रोग का नाश नहीं करता है अपितु सेवन से रोग का नाश होता है ।

(88)

।। चक्रवत् बदलते सुख दुःख।।

सुखमापतितं सेव्यं दुःखमापतितं तथा ।
चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च।।

शब्दार्थ :— सुखमापतितं = आये हुए सुख को, सेव्यं = भोगना चाहिए, दुःखमापतितं = आये हुए दुःख को, तथा = उसी प्रकार, चक्रवत् = चक्के की आरे की पंक्ति की तरह, परिवर्तन्ते = परिवर्तन शील होते हैं, दुःखानि = दुःख, च = और, सुखानि च = और सुख भी, ।

भावार्थ :—आये हुए दुःख और सुख दोनों को सहन करना चाहिए क्योंकि चक्के की तरह सुख और दुःख भी परिवर्तित होते रहते हैं ।

(89)

।। लक्ष्मी पाने की योग्यता।।

उत्साह सम्पन्नमदीर्घसूत्रं
क्रिया विधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम्।
शूरं कृतज्ञं दृढ़सौहृद च
लक्ष्मीः स्वयं याति निवास हे तोः।।

शब्दार्थ :– उत्साहसम्पन्नम् = उत्साह से युक्त, अदीर्घसूत्रम् = शीघ्र कार्य सम्पन्न करने वाला, क्रिया विधिज्ञं = क्रिया (कार्य) के विधि को जानने वाला, व्यसनेष्वसक्तम् = बुरे (निन्दित) कार्यो से दूर रहने वाले, शूरं = वीर, कृतज्ञं = दूसरे के किए उपकार को मानने वाले, दृढ़सौहृद च = दृढ़ मित्रता वाले (के पास), लक्ष्मीः = सम्पत्ति, स्वयं = अपने आप ही,, याति = आती है, निवास हेतोः = रहने के लिए, ।

भावार्थ :–उत्साह वाले, शीघ्र कार्य सम्पन्न करने वाले, कार्यों की विधि को जानने वाले, व्यसनों से दूर रहने वाले तथा शूर एवं दूसरे द्वारा किए उपकार को मानने वाले और दृढ मित्रता रखने वाले पुरूष के पास निवास करने के लिए लक्ष्मी स्वयं आ जाती है ।

(90)

।। धन कमाना, संग्रह आदि दुःखदायी ।।

धनं तावदसुलभं लब्धं कृच्छ्रेण पाल्यते ।
लब्धनाशो यथा मृत्युः तस्मादेतन्न चिन्तयेत्।।

ब्दार्थ :–धनं = धन, तावत् = शुरू में, असुलभं = दुर्लभ (है), लब्धं =

मिलने पर, कृच्छ्रेण = कठिनाई सें, पाल्यते = रक्षा किया जाता है, लब्धनाशो = प्राप्त धन का नाश, यथा = जैसे, मृत्युः = मरने के समान (है), तस्मात् = इसलिए, एतत् = यह, न = नहीं, चिन्तयेत् = चाहे ।

भावार्थ :—धन कठिनाई से मिलता है मिले पर भी रक्षा करना कठिन होता है तथा उसके नष्ट होने पर मृत्यु के समान कष्ट होता है इसलिए धन का चिन्तन नहीं करना चाहिए ।

(91)

।। महापुरूषों का स्नेह, क्रोध कैसा ? ।।

आमरणान्ताः प्रणयाः कोपास्तत्क्षणभँुराः ।
परित्यागाश्च निःसैंाः भविन्त हि महात्मनाम्।।

शब्दार्थ :—आमरणान्ताः = जीवन पर्यन्त, प्रणयाः = स्नेह, कोपाः = क्रोध, तत्क्षण = उसी समय, भँुराः = नष्ट हो जाते हैं , परित्यागाश्च = त्याग भी,, निःसैंाः = आसक्ति रहित, भवन्ति = होते हैं, हि = निश्चय, महात्मनाम् = महात्माओं के ।

भावार्थ :—महापुरूषों का स्नेह जीवन पर्यन्त स्थिर रहता है तथा उनका क्रोध क्षणभँुर होता है तथा दान आदि स्वार्थ रहित होता है ।

(92)

।। चार मित्र कौन से ।।

औरसं कृतसम्बन्धं तथा वंशक्रमाऽऽगतम्।
रक्षकं व्यसनेभ्यश्च मित्रं ज्ञेयं चतुर्विधम्।।

शब्दार्थ :–औरसं = पुत्र आदि, कृत सम्बन्धं = सम्बन्धी आदि, तथा = और, वंशक्रमाऽऽगतम् = कुल की परम्परा से प्राप्त, रक्षकं = रक्षा करने वाला, व्यसनेभ्यः = संकट से, मित्रं = मित्र, ज्ञेयं = समझना चाहिए, चतुर्विधम् = चार प्रकार का।

भावार्थ :– अपने पुत्रादि तथा सम्बन्धी (रिस्तेदार) एवं कुल कीपरम्परा से प्राप्त और विपत्तियों में रक्षा करने वाला ये चार प्रकार के मित्र होते है ।

(93)

।। राजा बनने योग्य ।।

कुलाचारजनाचारैरतिशुद्धः प्रतापवान् ।
धार्मिको नीतिकुशलः स .स्वामी युज्यतेभुवि ।।

शब्दार्थ :–कुलाचार = वंशपरम्परा से, जनाचारै = लोक व्यवहार (से), अतिशुद्धः = अत्यन्त पवित्र, प्रतापवान् = प्रतापी,, धार्मिको = धर्मनिष्ठ,० नीतिकुशलः = नीति निपुण, स = वह, स्वामी = राजा (मालिक), युज्यते = होता है, भुवि = संसार में,।

भावार्थ :–कुलाचार एवं लोकाचार से अतिशुद्ध पवित्र तथा प्रतापी,, धार्मिक, नीतिकुशल ही पृथिवी पर राजा के योग्य होता है ।

(94)

।। दुःखों का अन्त नहीं ।।

एकस्य दुःखस्य न यावदन्तं गच्छाम्यहं पारमिवार्णवस्य।
तावद् द्वितीयं समुपस्थितं मे छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति।।

शब्दार्थ :—एकस्य = एक, दुःखस्य = दुःख का, न = नहीं , यावदन्तं = जब तक अन्त नहीं होता है, गच्छाम्यहं = जाता हूं मैं , पारमिवार्णवस्य = समुद्र के पार के समान,, तावद् = तब तक, द्वितीयं = दूसरा, समुपस्थितं = उपस्थित हो गया, मे = मेरे लिए, छिद्रेष्वनर्था = अवसर पर अनर्थ, बहुलीभवन्ति = बहुत होते हैं ।

भावार्थ :—समुद्र के पार (अन्त)के सामन एक दुःख का अन्त नहीं हुआ उतने में दूसरा दुःख भी उपस्थित हो जाता है क्योंकि अवसर पर अनेक अनर्थ हुआ करते हैं।

(95)

।। आपत्ति काल में सहयोगी सच्चामित्र।।

स्वभावजं तु यन्मित्रं भाग्येनैवाभिजायते ।
तदकृत्रिमसौहार्दमापत्स्वपि न मुञ्चति।।

शब्दार्थ : स्वभावजं = स्वाभाविक (अकृत्रिभ), तु = निश्चय, यन्मित्रं = जो मित्र होता है, भाग्येनैव = भाग्य से ही,, अभिजायते = होता है, तद् = वह, अकृत्रिम = स्वाभाविक (सच्चा), सौहार्दम् = मित्रता, आपत्सु = आपत्ति काल में, अपि = भी, न = नही,, मुञ्चति = छोड़ता (छूटता) है ।

भावार्थ :—जो स्वाभाविक (सच्चा) मित्र होता है वह भाग्य से ही मिलता है । ऐसा मित्र आपत्ति काल में भी नहीं त्यागता है अर्थात् नहीं छोड़ता है ।

(96)

।। स्त्री मोहित की दुर्गति।।

अलक्तको यथा रक्तो निष्पीड़्य पुरूषस्तथा ।
अबलाभिर्बलाद् रक्तः पादमूले निपात्यते ।।

शब्दार्थ :—अलक्तको = आलता, यथा = जैसे, रक्तो = लाल (अनुरक्त), निष्पीडय = निचोड़कर के, पुरूषः = पुरूष, तथा = भी,, अबलाभिः = स्त्रियों के द्वारा, बलाद् = जबरदस्ती, रक्तः = अनुरक्त, पादमूले = पैरोतले, निपात्यते = डाल दिये जाते हैं, ।

भावार्थ :—जिस तरह स्त्रियाँ आलता (लाख) के रंग को जोर से दवा कर (निचोड़ कर) अपने चरणों में लगाती हैं, उसी तरह वे अपने अनुरागी या चाहने वालों को भी अपने चरणों मे डाल देती है ।

(97)

।। स्त्री की निर्दयता ।।

आस्तां तावत् किमन्येन दौरात्म्येनेह योषिताम्।
विधृतं स्वोदरेणापि घ्नन्ति पुत्रं स्वकं रुषा ।।

शब्दार्थ :—आस्तां = कहना बेकार है, तावत् = तब तक, किमन्येन = क्या अन्य से, दौरात्म्येन = दुष्टता से, इह = संसार में, योषिताम् = स्त्रियों का, विधृतं = धारण किया हुआ, स्वोदरेणापि = अपने पेट में भी, घ्नन्ति = मार देती हैं, पुत्रं = पुत्र को, स्वकं = अपने, रूषा = क्रोध से ।

भावार्थ :—स्त्रियों की दुष्टता की बात कहां तक कहें, ये क्रोध में आकर अपने पुत्र को भी मार डालती है । यह सब एक अपेक्षा से कथन है ।

(98)

।। देवता भी नहीं जान सकते ।।

नृपस्य चित्तं कृपणस्य वित्तं मनोरथं दुर्जनमानवानाम् ।
स्त्रियश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवो न जानाति कुतो मनुष्यः ।।

शब्दार्थ :– नृपस्य = राजा का, चित्तं = मन, कृपणस्य = कंजूस के, वित्तं = धन को, मनोरथं = मन की बात, दुर्जनमानवानां = दुष्ट मनुष्यों के , स्त्रियश्चरित्रं = स्त्री का चरित्र, पुरूषस्य = पुरूष का, भाग्यं = भाग्य (भविष्य), देवो = देवता भी,, न = नहीं , जानाति = जानते हैं, कुतो = कहां से, मनुष्यः = मनुष्य ।

भावार्थ :–राजा के मन को, कृपण (कंजूस) के धन को, दुष्ट व्यक्ति के मनोरथ (इच्छा) को, स्त्री के चरित्र (स्वभाव) को, पुरूष के भाग्य (भविष्य) को देवता भी नहीं जानते फिर मनुष्य कैसे जान सकता हैं ।

(99)

।। स्त्रियों का स्वाभाव ।।

यदि स्यात् पावकः शीतः प्रोष्णो वा शशला छनः ।
स्त्रीणां तदा सतीत्वं स्यात् यदि स्यात् दुर्जनो हितः।।

शब्दार्थ :–यदि = कदाचित् (किसी प्रकार से), स्यात् = होवे, पावकः = अग्नि, शीतः = शीतल, प्रोष्णो = गरम, वा = निश्चय, शशला छनः = चन्द्रमा, स्त्रीणां = स्त्रियों का, तदा = तब, सतीत्वं = सती होना, स्यात् = होवे, यदि = कदाचित् , स्यात् = होवे, दुर्जनो = दुष्ट व्यक्ति, हितः = हितकारी ।

भावार्थ :–अगर आग शीतल हो जाये, चन्द्रमा गरम हो जाये, दुर्जन हितकारी हो जाये, तो स्त्रियों के सतित्व का विश्वास हो, अर्थात् स्त्रियों की मीठी बातों में नहीं भूलना चाहिए इनकी बातें जैसी हैं वैसा दिल नहीं है । यह आपेक्षिक कथन है ।

(100)

।। स्त्रियों का मन कैसा, वचन कैसा।।

सुमुखेन वदन्ति वल्गुना प्रहरन्त्येव शितेन चेतसा।
मधुतिष्ठति वाचि योषितां हृदये तु हलाहलं विषम् ।।

शब्दार्थ :—सुमुखेन = सुन्दर मुख से, वदन्ति = बोलती हैं, वल्गुना = मधुरता से, प्रहरन्त्येव = प्रहार करती हैं, शितेन = तीक्ष्ण, चेतसा = चित्त (मन) से, मधु = शहद, तिष्ठति = रहता है, वाचि = वाणी में, योषितां = स्त्रियों के, हृदये = हृदय में, तु = किन्तु , हलाहलं = भयानक, विषम् = जहर ।

भावार्थ :—स्त्रियाँ सुन्दर मुख से मनोहर मनोहर बातें करती हैं और तीखेमन (हृदय) से प्रहार करती हैं । इनकी बातों में मधु और हृदय में भयानक विष रहता है ।

(101)

।। पाँचामाताएं कौन सी ।।

राजपत्नी गुरोः पत्नी मित्र पत्नी तथैव च।
पत्नीमाता स्वमाता च पंचैताः मातरः स्मृताः।।

शब्दार्थ :—राजपत्नी = राजा की स्त्री (रानी) , गुरोः = गुरू की,, पत्नी = स्त्री, मित्र = दोस्त, पत्नी = स्त्री , तथैव = और , च = निश्चित, पत्नीमाता = अपनी स्त्री की माता, स्वमाता = अपनी माता, च = और, पंचेताः = ये पाँच, मातरः = मातायें, स्मृताः = होती हैं।

भावार्थ :—राजा की रानी, गुरू की स्त्री , मित्र की पत्नी, और अपनी पत्नी की माता अर्थात् सासु और अपनी माता ये पांच माताएं कही गयी हैं ।

(102)

।। नरक देने वाले व्यसन ।।

मांसं च द्यूतं च सुरां च वेश्यां, पापर्धिचोरी परदारसेवाम्।
एतानिसप्त व्यसनानि लोकेघोरातिघोरं नरकं वदन्ति ।।

शब्दार्थ :– मांसं = मांस, च = और, द्यूतं = जुआ, च = और, सुरां = मदिरा, च = और, वेश्यां = वेश्या, पापर्धि–चोरी = शिकार और चोरी, परदारसेवाम् = परायी स्त्री का सेवन, एतानि = ये, सप्त = सात, व्यसनानि = व्यसन, लोके = संसार में, घोरातिघोरं = भयंकर, नरकं = नरक को, वदन्ति = कहते (देते) हैं ।

भावार्थ :– मांस, जुआ, मदिरा, वेश्या, शिकार, चोरी और परायी स्त्री की सेवा (सेवन), ये सातों व्यसन घोर से घोर नरक को देने वाले हैं ।

(103)

।। शरीर ऐश्वर्य अनित्य, मृत्यु–पास ।।

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः ।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्म संग्रहः।।

शब्दार्थ :–अनित्यानि = नाशवान् होता है, शरीराणि = शरीर, विभवो = धन, नैव = नहीं, शाश्वतः = निरन्तर,(नहीं रहता) नित्यं = हमेशा, सन्निहितो = पास रहती है, मृत्यु = मौत, कर्तव्यो = करना चाहिए, धर्म संग्रहः = धर्म का संचय, ।

भावार्थ :–इस संसार में शरीर अनित्य है ऐश्वर्य अनित्य है और मृत्यु सदैव पास है इसलिए धर्म करो ।

(104)

।। चल क्या अचल क्या ? ।।

चला लक्ष्मीश्चलाः प्राणाश्चले जीवितमन्दिरे ।
चलाचले च संसारे धर्म एको हि निश्चलः ।।

शब्दार्थ :—चला = चंचल, लक्ष्मीः = वैभव, चलाः = चंचल, प्राणाः = जीवन (श्वास), चले = दोनों चंचल हैं , जीवितमन्दिरे = जीवन और घर , चलाचले = चंचल और अचल, च = और , संसारे = संसार में, धर्म = धर्म, एको हि = एक ही , निश्चलः=निश्चल है ।

भावार्थ :— इस चराचर संसार में धन, प्राण, जीवन, घर सभी चलायमान है कवेल एक मात्र धर्म ही निश्चल है।

(105)

।। भतृहरि को त्रियाचरित्र का ज्ञान ।।

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता ।
साप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः।
अस्मत् कृते च परितुष्यति काचिदन्या ।
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च ।।

शब्दार्थ :—यां = जिसकी,, चिन्तयामि = चिन्ता करता हूँ, सततं = निरन्तर, मयि = मेरे प्रति, सा = वह, विरक्ता = विरक्त है , साप्यन्यमिच्छति = वह भी अन्य को चाहती है, जनं = जन को , स = वह, जनोऽन्यरासक्तः = जन अन्य में आसक्त है, अस्मत् = हमारे, कृते = करने से, च = निश्चित, परितुष्यति = सन्तुष्ट होती हैं, काचिदन्या = कोई और, धिक् =

धिक्कार है, तां = उसको, च = और, तं = उसको, च = और, मदनं = कामदेव को, च = निश्चित, इमां = इसको, च = निश्चित, मां = मुझको, च = और, ।

भावार्थ :– जिसको मैं सदा चाहता हूं वह मुझे नहीं चाहती, वह दूसरे पुरूष को चाहती है,वह पुरूष भी उसको नहीं चाहता है तथा किसी अन्य स्त्री पर आसक्त है और वह स्त्री भी अपने चाहने वाले को न चाहकर मुझको चाहती है इसलिए उस स्त्री (रानी) को तथा उस (रानी) को चाहने वाले पुरूष को, एवं उस पुरूष को चाहने वाली अन्य स्त्री को तथा कामदेव को और मुझे भी धिक्कार है।

(106)

।। किसके कारण क्या भय ।।

भोगे रोग भयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयम् ।
मौने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जरायाः भयम् ।
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयम् ।
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुविनृणां वैराग्यमेवाभयम् ।।

शब्दार्थ :–भोगे = सांसारिक विषय के भागों में,, रोगभयं = रोग का भय रहता है, कुले = कुल (खानदान) में, च्युतिभयं = पतन का भय रहता है, वित्ते = धन में, नृपालाद् = राजा से, भयम् = भय होता है, मौने = चुप रहने में , दैन्यभयं = दीनता का भय रहता है, बले = बलवान् होने पर, रिपुभयं = शत्रु का भय होता है, रूपे = अच्छा रूप होने पर, जरायाः = बुढ़ापा का, भयम् = भय रहता है, शास्त्रे = शास्त्रीय ज्ञान में, वादभयं = शास्त्रार्थ का भय होता है, गुणे = गुणवान् होने पर, कृतान्तात् = यमराज (मृत्यु) का, भयम् = भय होता है, सर्वं = सभी,, वस्तु = उपर कहे हुए,

भयान्वितं = भय से युक्त हैं, भुविनृणां = पृथिवी पर मनुष्यों को, वैराग्यम् = विरक्ति (लगाव नहीं होना), एव = ही, अभयम् = भय रहित है ।

भावार्थ :—भोग से रोग होने का, कुल में दोष होने का (पतन होने का भय) धन होने पर राजा का भय, मौन धारण करने पर दीनता का भय, बलशाली होने पर शत्रु का भय, रूपवान् होने पर बुढ़ापा का भय, शास्त्र ज्ञान होने पर शास्त्रार्थ होने का भय, गुणवान् को दुष्ट का भय, शरीर को (यमराज) मृत्यु का भय होता है इस प्रकार संसार में कोई भी वस्तु भय रहित नहीं है केवल एकमात्र वैराग्य (प्रभु की शरणागति) ही भय रहित है ।

(107)

।। किनमें क्या नहीं होता ।।

काके शौचं द्यूतकारे च सत्यं
सर्पे क्षान्तिः स्त्रीषु कामोपशान्ति।
क्लीवे धैर्यं मद्यपे तत्वचिन्ता
राजा मित्रं केन दृष्टं श्रुतं वा ।।

शब्दार्थ :—काके=कौवे में, शौचं = पवित्रता, द्यूतकारे = जुआरी में, सत्यं =सत्यभाषण, च= और, सर्पे = सर्प में, क्षान्ति=सहनशीलता, स्त्रीषु = स्त्रियों में, कामोपशान्ति = काम वासना का अभाव, क्लीवे = नपुंसक में, धैर्यं = धीरता, मद्यपे = शराबी में, तत्वचिन्ता = तत्व ज्ञान का चिन्तन, राजा = नृप, मित्रं = दोस्त, केन = किसने, दृष्टं = देखा है, वा = अथवा, श्रुतं = सुना है,।

भावार्थ :—कौवे में पवित्रता, जुआरी में सच्चाई, सर्प में सहनशीलता, स्त्रियों में काम वासना का अभाव, नपुंसक में धीरता, शराबी में तत्व चिन्तन, राजा का मित्र होना, किसने देखा सुना है। अर्थात् इनमें इन गुणों की कमी होती है ।

(108)

।। अधकचरा ज्ञानी ।।

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः ।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि तं नरं न रंजयति ।।

शब्दार्थ :—अज्ञः = मूर्ख, सुखमाराध्यः = आसानी से प्रसन्न किया जा सकता है, सुखतरम् = अत्यन्त आसानी से, आराध्यते = प्रसन्न किया जा सकता है, विशेषज्ञः=विशेष ज्ञान वाला, ज्ञानलवदुर्विदग्धं= ज्ञान से थोड़ा सम्पन्न (अल्प ज्ञान वाले) को, ब्रह्मापि = सृष्टिकर्ता भगवान् भी , तं = उस , नरं = नर को, न = नहीं , रंजयति = प्रसन्न कर सकता है ।

भावार्थ :—मूर्ख को सुगमता से प्रसन्न (अनुकूल) किया जा सकता है, तथा शिक्षित व्यक्ति को अत्यन्त आसानी से प्रसन्न (अनुकूल) किया जा सकता है, किन्तु अल्प ज्ञानी को ब्रह्मा भी प्रसन्न नहीं कर सकता है ।

(109)

।। बोली से पहचान ।।

मूर्खोऽपि शोभते तावत् सभायां वस्त्रवेष्टितः ।
तावच्च शोभते मूर्खो यावत् किंचित् न भाषते।।

शब्दार्थ :—मूर्खोऽपि = मूर्ख भी , शोभते = सुशोभित होता है, तावत् = तब तक, सभायां = सभा में, वस्त्रवेष्टितः = वस्त्र पहना हुआ, तावच्च = तब तक ही , शोभते = सुशोभित होता है , मूर्खो = मूर्ख, यावत् = जब तक, किंचित् = कुछ भी , न = नहीं , भाषते = बोलता है ।

भावार्थ :— वस्त्र पहन कर सभा में बैठा हुआ मूर्ख तभी तक शोभा पाता

है जब तक कुछ बोलता नहीं है, क्योंकि बोलने पर सभी को ज्ञान हो जाता है कि यह मूर्ख है।

(110)

।। पशु से मनुष्य में विशेषता ? ।।

आहार निद्रा भय मैथुन च ,
सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मोहि तेषामधिको विशेषो ,
धर्मेणहीनाः पशुभिः समानाः।।

शब्दार्थ :– आहार = भोजन, निद्रा = सोना, भय = डरना, मैथनु च = स्त्री सम्भोग, सामान्यम् = सामान्य रूप से, एतत् = यह, पशुभिः = पशुओं से, नराणाम् = नरों का (तुल्य है) समान है, धर्मो = धर्म, हि = निश्चित, तेषाम् = पशुओं से, अधिको = अधिक, विशेषो = विशेषता है, धर्मेण = धर्म से, हीनाः = रहित लोग, पशुभिः = पशुओं के, समानाः = समान है,।

भावार्थ :– भोजन, निद्रा, भय और मैथुन यह चारों पशु और मनुष्य दोनों में समान रूप से पाया जाता है किन्तु पशुओं की अपेक्षा मनुष्य में धर्म ही एक विशेषता है यदि मनुष्य में वह नहीं हो तो वह पशु के समान है।

(111)

कृमिकुल चित्तं लालाल्किन्नं विगर्हिजुगुप्सितम्,
निरुपमरसं प्रीत्या खादन् नरास्थि निरामिषम्।
सुरपतिमपि श्वा पार्श्वस्थं विलोक्य न शंकते,
नहि गणयति क्षुद्रो जन्तुः परिग्रह फल्गुताम्।।

शब्दार्थ :–कृमिकुलचित्तं = कीड़ो के समूह से भरा हुआ, लालाक्लिन्नं = लार से युक्त, विगर्हिजुगुप्सितम् = निन्दित और दुर्गन्ध युक्त, निरूपमरसं = रस रहित, प्रीत्या = प्रीति पूर्वक, खादन् = खाते हुए, नरास्थि = मनुष्य के हड्डी को, निरामिषम् = जिसमें मांस नहीं है, सुरपतिमपि = इन्द्र को भी, श्वा = कुत्ता, पार्श्वस्थं = पास में स्थित, विलोक्य = देखकर, न = नहीं , शंकते = शंका करता है, नहि = न, गणयति = समझता (गिनता) है, क्षुद्रो = नीच, जन्तुः = प्राणी, परिग्रह = ग्रहण किये हुए वस्तु की,, फल्गुता = तुच्छता को ।

भावार्थ :–जिस तरह कीड़ो से भरे हुए, लार युक्त, दुर्गन्धित, रस मांसहीन मनुष्य के घृणित हाड़ को आनन्द से खाता हुआ कुत्ता, पास खड़े हुए इन्द्र की भी शंका नहीं करता उसी तरह क्षुद्र जीव जिसका ग्रहण कर लेता है उसकी तुच्छता पर ध्यान नहीं देता है ।

(1 1 2)

।। विद्वान् का समय : मूर्ख का समय ।।

काव्यशास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम् ।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन च ।।

शब्दार्थ :– काव्यशास्त्रविनोदेन = काव्य और शास्त्र के विनोद के द्वारा, कालो = समय, गच्छति = वीतता है, धीमताम् = बुद्धिमानों का, व्यसनेन = व्यसन (दुराचरण) से, च = और , मूर्खाणां = मूर्खों का, निद्रया = निद्रा से, कलहेन = कलह (झगड़ा) से, वा = निश्चित,।

भावार्थ :– बुद्धिमानों का समय काव्य शास्त्र के विनोद (अध्ययन अध्यापन–चर्चा) से बीतता है तथा मूर्खों का समय निद्रा, कलह और व्यसनों के द्वारा व्यतीत होता है ।

(113)

।। भारभूत मनुष्य कौन ? ।।

येषां न विद्या न तपो न दानम्
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः
ते मर्त्यलोके भुविभारभूताः
मनुष्यरूपेण मृगाः चरन्ति।।

शब्दार्थ :—येषां = जिनमें, न = नहीं, विद्या = शिक्षा, न = नही, तपो =तपस्या, न = नहीं, दानं = दान, ज्ञानं = ज्ञान, न = नहीं , शीलं = शील, न = नहीं, गुणो = गुण, न = नहीं, धर्मः = धर्म (है), ते = वे, मर्त्यलोके = मनुष्य लोक में, भुवि = पृथिवी पर, भारभूताः = भारभूत हैं, मनुष्यरूपेण = मनुष्य रूप से, मृगाः = मृग (पशु), च = निश्चित, चरन्ति =: चरते हैं।

भावार्थ :—जिनमें विद्या, तप, दान, ज्ञान, शील, गुण, धर्म ये सात नहीं हैं वे मनुष्य लोक में पृथ्वी पर भारभूत पशु के समान रहते हैं ।

(114)

।। माता के मलमूत्र के समान कौन ? ।।

दाने तपसि शौर्ये च यस्य न प्रस्थितं यशः ।
विद्यायामर्थलाभे च मातुरूच्चार एव स : ।।

शब्दार्थ :— दाने = दान में, तपसि = तपस्या में, शौर्ये = वीरता में, च = और, यस्य = जिसका, न = नहीं , प्रस्थितं = प्रसिद्ध हुआ है, यशः = यश, विद्यायामर्थलामे = विद्या में अर्थ लाभ में, च = और, मातुरूच्चार = माता का मल, एव = ही, सः = वह, ।

भावार्थ :—जिसने दान, तप, बहादुरी, विद्या और धन कमाने में यश (नाम) नहीं पाया वह माता के मल मूत्र के समान है ।

(1 1 5)

।। किसका जन्म व्यर्थ ? ।।

धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते ।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम् ।।

शब्दार्थ :—धर्मार्थकाममोक्षाणां = धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में, यस्यैकोऽपि = जिसके पास एक भी, न = नहीं, विद्यते = है, अजागल—स्तनस्येव = बकरी के गले के स्तन के समान, तस्य = उसका, जन्म = उत्पन्न होना, निरर्थकम् = निरर्थक है; ।

भावार्थ :—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से जिसके पास एक भी नहीं हैं उसका जन्म बकरी के गले मे स्तन के समान निरर्थक होता है।

(1 1 6)

।। क्या समझ कर पुण्य कमाओ ? ।।

त्यज दुर्जनसंसर्गं भज साधुसमागमम् ।
कुरु पुण्यमहोरात्रं स्मर नित्यमनित्यताम् ।।

शब्दार्थ :—त्यज = त्याग कर दो, दुर्जन = दुष्ट के, संसर्ग = संसर्ग को, भज= सेवन करो, साधु = सज्जन के, समागमम् = संग को, कुरू = करो, पुण्यम् = पुण्य, अहोरात्रं = दिनरात, स्मर = स्मरण करो, नित्यम् = प्रतिदिन, अनित्यताम् = क्षण भंगुरता को,।

भावार्थ :—दुर्जनों का संग त्याग करके तथा सज्जनों का संग करके और संसार की अनित्यता का सदा ध्यान रखकर दिन रात पुण्य का संचय करो ।

(117)

।। किस धन की बराबरी नहीं ।।

हर्तुर्याति न गोचरं किमपि शं पुष्णाति यत्सर्वदा ।
ह्यर्थिभ्यः प्रतिपाद्यमानमनिशं प्राप्नोति वृद्धिं पराम्।
कल्पान्तेष्वपि न प्रयाति निधनं विद्याख्यमन्तर्धनम् ।
येषां तान्प्रति मान्मु चत नृपाः कस्तैः सह स्पद्धते।।

शब्दार्थ :– हर्तुः = चुराने वाले को, न = नहीं , याति = होता है, गोचरं=दृष्टिगोचर, किमपि = कुछ भी, शं = कल्याण (शुभ), पुष्णाति =करती है, यत्=जो, सर्वदा =हमेशा, ह्यर्थिभ्यः=चाहने वालों के लिए, प्रतिपाद्यमानम् = होने वाला, अनिशं = दिन रात, प्राप्नोति = प्राप्त होता है, बृद्धिं = विकास को, पराम् = श्रेष्ठ, कल्पान्तेष्वपि = सृष्टि के अन्त में भी,, न = नहीं, प्रयाति = होता है, निधनं = नाश, विद्याख्यम् = विद्या नाम वाले, अन्तर्धनम् = आन्तरिक (आत्मा के) धन का, येषां = जिनका,तान्प्रति = उनके प्रति, मानमु चत = मान को त्याग दो, नृपाः = राजा लोग(धन वाले) कस्तैः = कौन उनके, सह = साथ, स्पर्द्धते = स्पर्धा (होड़) करेगा,।

भावार्थ :– हे राजाओं (धनवानों) जिन महापुरूषों के पास असाधारण विद्यारूपी गुप्त धन है उनसे आप हरगिज भी अभिमान न करें । उस धन को चोर देख नहीं सकता है, तथा उससे सदा सुख की वृद्धि होती है याचकों को देने से भी वह सदा बढ़ता ही रहता है और कल्पान्त या प्रलय काल में भी उसका नाश नहीं होता है जिनके पास ऐसा धन है उनकी बरावरी कौन कर सकता है ।

(118)

।। वाणी रूप आभूषण ही आभूषण है ।।

केयूराः न विभूषयन्ति पुरूषं हाराः न चन्द्रोज्ज्वलाः ।
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालंकृताः मूर्धजाः ।
वाण्येका समलंकरोति पुरूषं या संस्कृताः धार्यते ।
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम् ।।

शब्दार्थ :—केयूराः = वाजूवन्द (आभूषण बाँहों का), न = नहीं, विभूषयन्ति = शोभा बढ़ाते हैं , पुरूषं = पुरूष को, हाराः = हार, न = नहीं , चन्द्रोज्ज्वलाः = चन्द्रमा के समान उज्ज्वल, न = नहीं, स्नानं = स्नान, न = नहीं , विलेपनं = चन्दन आदि का लेप, न = नहीं, कुसुमं = पुष्प, नालंकृताः = नहीं अलंकृत किया हुआ, मूर्धजाः = शिर के बाल, वाण्येका = वाणी ही एक, समलंकरोति = सुशोभित करती है, पुरूषं = पुरूष को, या = जो, संस्कृताः = अच्छी, धार्यते = धारण की जाती है, क्षीयन्ते = नष्ट हो जाते हैं, खलु = निश्चय ही, भूषगानि = सभी आभूषण, सततं = निरन्तर, वाग् = वाणी, भूषणं = आभूषण, भूषणम् = भूषण है ।।

भावार्थ :—केयूर (बाहों के आभूषण) तथा चमकीले हार, स्नान, चन्दन आदि लेप, पुष्पमाला आदि का धारण, तथा सवारे हुए केश पुरूष को सुशोभित नहीं करते हैं । वाणी ही यदि अच्छी और सुसंस्कृत धारण की हुयी हो तो वह अकेले ही पुरूष को सुशोभित कर देती है अन्य आभूषण नष्ट हो जाते हैं किन्तु वाणी रूप आभूषण ही आभूषण है ।

(119)

।। विद्या गुरू की गुरू ।।

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तंधनम् ।
विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरूणां गुरूः ।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतम् ।
विद्या राजसु पूज्यते नहिं धनं विद्याविहीनः पशुः।।

शब्दार्थ :–विद्या = शिक्षा, नाम = अध्ययन, नरस्य = नर का , रूपमधिकं = सच्चा रूप है, प्रच्छन्न = छिपा हुआ, गुप्तं = ढका हुआ , धनं = धन, विद्या = वाणी,, भोगकरी = भोग कराने वाली,, यशः = यश , सुखकरी = सुख कराने वाली , विद्या = सरस्वती, गुरूणां = गुरूओं का भी, गुरूः = गुरू (श्रेष्ठ) है, विद्या = सरस्वती,, बन्धुजनो = बन्धुजन है, विदेशगमने = विदेश जाने पर, विद्या = सरस्वती,, परं = उत्कृष्ट (श्रेष्ठ), दैवतं = देवता है, विद्या = सरस्वती,, राजसु = राजाओं में भी, पूज्यते = मान पाती है, नहिं = न, धनं = अन्य धन, विद्याविहीनः = विद्या के बिना (मनुष्य), पशुः = पशु के समान है।

भावार्थ :– विद्या मनुष्य का सच्चा रूप और छिपा हुआ धन है विद्या मनुष्य को भोग, सुख और यश देने वाली है विद्या गुरूओं की भी गुरू है परदेश में विद्या ही बन्धु का काम करती है, विद्या ही परम देवता है । राजाओं में भी विद्या का ही मान है, धन का नहीं, जिसमें विद्या नहीं है वह पशु के समान है।

(120)

।। संसार कैसे पुरूषों पर ठहरा है ।।

दाक्षिण्यं स्वजने दया परजने शाठ्यं सदा दुर्जने।
प्रीतिः साधुजने नयोनृप जने विद्वज्जने चार्जवम्।

शौर्यं शत्रु जने क्षमा गुरूजने नारीजने धूर्तता ।
ये चैवं पुरूषाः कलासु कुशलाः तेष्वेव लोकस्थितिः ।।

शब्दार्थ :—दाक्षिण्यं = कुशलता, स्वजने = अपने लोगों के प्रति, दया = उदारता , परजने = दूसरे लोगों के प्रति, शाठ्यं = शठता, दुर्जने = दुष्टों के प्रति , प्रीतिः = प्रेम, साधुजने = सज्जन लोगों के प्रति, नयो= नीतिं, नृपजने = राजा के प्रति , विद्वज्जनेषु = विद्वानों के प्रति, आर्जवम् = सरलता, शौर्यं = शूरता, शत्रुजने = शत्रुओं के प्रति, नारीजने = स्त्रियों के प्रति, धूर्तता = चतुरता, ये = जो, चैवं = इस प्रकार, पुरूषाः = व्यक्ति, कलासु = कलाओं में, कुशलाः = कुशल हैं, तेष्वेव = उन्हीं में, लोकस्थितिः = संसार की स्थित (ठहराव) है ।

भावार्थ :—जो अपने रिस्तेदारों के प्रति उदारता, दूसरों के प्रति दया, दुष्टों के साथ शठता, सज्जनों के साथ प्रीति, राज सभा में नीति, विद्वानों के आगे नम्रता, शत्रुओं के साथ क्रूरता, गुरूजनों के साथ सहनशीलता और स्त्रियों के साथ धूर्तता या चतुरता का व्यवहार करते हैं उन्हीं कला निपुण श्रेष्ठ मनुष्यों से लोक मर्यादा या लोक स्थिति है अर्थात् संसार उन्हीं पर ठहरा है ।

(121)

।। सुख पाने के लिए पुरूष को क्या आवश्यक ?।।

सुनुः सच्चरितः सती प्रियतमा स्वामी प्रसादोन्मुखः,
स्निग्धं मित्रमव चकः परिजनो निः शेषक्लेशं मनः ।
आकारो रूचिरः स्थिरश्च विभवः विद्यावदातं मुखम्,
तुष्टे विष्टपहारिणीष्टदहरौ सम्प्राप्यते देहिना ।।

शब्दार्थ :—सुनुः=पुत्र,सच्चरितः=अच्छा चरित्र वाला, सती =पतिव्रता, प्रियतमा = स्त्री, स्वामी = मालिक, प्रसादोन्मुखः =प्रसन्न रहने वाला, स्निग्धां = स्नेह रखने वाला, मित्रं= दोस्त,अव चकः=कपट रहित,परिजनः=नातेदार, निःशेष—क्लेशं =कलेश रहित, मनः=मन, आकारो=आकृति, रूचिरः=सुन्दर, स्थिरश्च=स्थिर, विभवः=धन, विद्यावदातं =विद्या से प्राप्त, मुखं=मुँह, तुष्टे=प्रसन्न होने पर, विष्टप=स्वर्ग को, हारिणि=लल्जित करने वाले, ईष्टद = अभिलषित को देने वाले, हरौ = भगवान के, सम्प्राप्यते = प्राप्त होता है, देहिना = शरीरधारी के द्वारा, ।

भावार्थ :—सदाचारी पुत्र, पतिव्रता स्त्री, प्रसन्न स्वामी ,स्नेही मित्र, निष्कपट रिस्तेदार, क्लेशरहित मन सुन्दर आकृति स्थिर सम्पत्ति विद्या से सुशोभित भाव ये सब भगवान् की कृपा से ही अर्थात् स्वयं के पुण्यों से ही प्राप्त होता है ।

(122)

।। अधम—मध्यम उत्तम स्वभाव वाले ।।

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः,
प्रारभ्य विघ्नविहिता विरमन्ति मध्याः ।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः ,
प्रारभ्यचोत्तमजना न परित्यजन्ति ।।

शब्दार्थ :— प्रारभ्यते = प्रारम्भ किया जाता है, न = नहीं, खलु = निश्चय, विघ्नभयेन =विघ्न के भय से, नीचैः = नीच व्यक्ति के द्वारा, प्रारभ्य =शुरू करके , विघ्नविहिता = विघ्नपड़ने पर, विरमन्ति =रूक जाते हैं (कार्यबन्द कर देते हैं), मध्याः=मध्यम लोग, विघ्नैः= विघ्नों से , पुनः पुनरपि=वार वार भी, प्रतिहन्यमानाः = रूकावट प्राप्त करने वाले, प्रारभ्य=शुरू करके, उत्तमजनाः = श्रेष्ठ लोग, न= नहीं, परित्यजन्ति = छोड़ते हैं ।

भावार्थ :—नीच (अधम) स्वभाव वाले मनुष्य विघ्न के भय से कार्य प्रारम्भ नहीं करते हैं, मध्यम स्वभाव (श्रेणी) के लोग प्रारम्भ तो कर देते हैं किन्तु विघ्न पड़ने पर उस कार्य को बीच में ही छोड़ देते है । उत्तम स्वभाव (श्रेणी) के श्रेष्ठ पुरूष जब कोई कार्य प्रारम्भ कर देते हैं तो कितना भी विघ्न पड़े उसे बीच में नहीं छोड़ते है अर्थात् कार्य पूरा करके ही विश्राम लेते हैं ।

(1 2 3)

।। सिंह का पराक्रम तुच्छ पर नहीं ।।

स्वल्पं स्नायुवसावशेष मलिनं निर्मांसमप्यसस्थि गौः,
श्वा लब्ध्वा परितोषमेति न तु तत्तस्य क्षुधाशान्तये ।
सिंहो जंम्बुकमंकमागतमपि त्यक्त्वा निहंति द्विपम्,
सर्वः कृच्छ्रगतोऽपि वांछति जनः सत्वानुरूपं फलम् ।।

शब्दार्थ :– स्वल्पं = थोड़ा, स्नायुवसावशेषमलिनं = स्नायु (नसें) वसा (चर्बी) का बचा हुआ थोड़ा सा भाग, निर्मांसं = मांस रहित , अस्थि = हड्डी मात्र, गौः = मरी गाय का शरीर, श्वा = कुत्ता , लब्ध्वा = पाकर, परितोषमेति = सन्तुष्ट हो जाता है, न = नहीं , तु = किन्तु, तत्तस्य = वह उसके, क्षुधाशान्तये = भूख की शांति के लिए (होता है), सिंहो = शेर, जम्बुकम् अंकम् आगतमपि = सियार के अपनी गोद में आ जाने पर भी,, त्यक्त्वा = उसे छोड़कर, निहंति = मारता है, द्विपम् = हाथी को, सर्वः = सभी , कृच्छ्रगतोऽपि = दुःखी होने पर भी,, वांछति = चाहता है, जनः = व्यक्ति, सत्वानुरूपं = अपने पराक्रम के अनुरूप , फलम् = परिणाम को, ।

भावार्थ :—गाय आदि मरे हुए पशुओं के मांस रहित अस्थि प जर मात्र को पाकर ही कुत्ता (नीच) संतुष्ट हो जाता है जब कि उससे उसका पेट भी नहीं भरता है। वहीं सिंह अपने गोद में सियार के आ जाने पर भी उसे त्याग

कि वह दुःखी होने पर भी अपने पराक्रम के अनुसार ही कार्य करता हैं ।

(124)

।। किसके बिना किस का नाश ।।

दौर्मन्त्र्यान्नृपतिः विनश्यति यतिः संगात्सुतो लालनात्,
विप्रोनध्ययनात् कुलं कुतनयात् शीलं खलोपासनात् ।
ह्रीर्मद्यात् अनवेक्षणादपि कृषिः स्नेहः प्रवासाश्रयात्,
मैत्री चाप्रणयात् समृद्धिरनयात्त्यागात्प्रमादात्धनम् ।।

शब्दार्थ :—दौर्मन्त्र्यात् = दुष्टमंत्री से, नृपतिः = राजा, विनश्यति = नष्ट होता है, यतिः = साधु , संगात् = संग से, सुतो = पुत्र , लालनात् लाड़ से (अधिक प्यार से), विप्रो = ब्राह्मण, अनध्ययनात् = नहीं पढ़ने से, कुलं = वंश, कुतनयात् = कुपुत्र से, शीलं = स्वभाव, खलोपासनात् = दुष्ट का संग करने से, ह्री = लज्जा, मद्यात् = मद्यपान से, अनवेक्षणादपि = और नहीं देख रेख करने से, कृषिः = खेती, स्नेहः = प्रेम , प्रवासाश्रयात् = दूर देश रहने से, मैत्री = मित्रता, च = और, अप्रणयात् = प्रेम नहीं करने से, समृद्धिः = सम्पत्ति, अनयात् = अनीति से, त्यागात् = त्याग से, प्रमादात् = प्रमाद से, धनम् = धन, ।

भावार्थ :— दुष्ट (मंत्री) से राजा, संसारी लोागें की संगति से साधु (सन्यासी), पुत्र अधिक प्यार से, ब्राह्मण नहीं पढ़ने से, कुल, कुपुत्र से, दुष्ट की संगत से स्वभाव, मदिरा पीने से लज्जा, नहीं देख रेख करने से खेती, परदेश रहने से स्नेह, स्नेह नहीं रखने से मित्रता, अनीति से सम्पति और त्याग तथा प्रमाद से धन नष्ट हो जाता है।

(125)

।। जन्मना नहीं कर्मणा महत्त्वपूर्ण ।।

न जात्या ब्राह्मणश्चात्र क्षत्रियो वैश्य एव च ।
न शूद्रो न च वै म्लेच्छो भेदिता गुण कर्मभिः।

शब्दार्थ :—न = नहीं , जात्या = जाती से, ब्राह्मणः = ब्राह्मण , च = और, अत्र = इस संसार में, क्षत्रियो = क्षत्रिय , वैश्य = वैश्य (बनिया), एव = निश्चित, च = और, न = नहीं, शूद्रो = शूद्रजाती,, न = नहीं, च = और, वै = निश्चय, म्लेच्छो = अन्त्यज (नीच) जाती, भेदिता = भेद, गुणकर्मभिः = गुण और कर्म से।

भावार्थ :—इस संसार में ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और म्लेच्छ जन्म से नहीं होते किन्तु गुण और कर्म से होते हैं ।

(126)

।। कपूत से कुल का नाश ।।

एकेन शुष्क वृक्षेण दह्यमानेन वह्निना ।
दह्यते तद् वनं सर्वं कुपुत्रेण कुलं यथा ।

शब्दार्थ :—एकेन=एक, शुष्कवृक्षेण =सूखे पेड़ से, दह्यमानेन = जलता है , वह्निना = अग्नि से , दह्यते=जलता है, तद् = वह , वनं = वन, सर्वं = सब , कुपुत्रेण = कुपुत्र से, कुलं =वंश, यथा = जैसे,।

भावार्थ :— आग से जलता हुआ एक ही सूखा वृक्ष सारे वन को नष्ट कर देता है उसी तरह एक कपूत से कुल का नाश हो जाता है।

(127)

।। धन की तीन गति ।।

दानं भोगो नाशः ति ो गतयो भवन्ति धनस्य।
यो न ददाति न मुंक्तेतस्य तृतीया गतिर्भवति।

शब्दार्थ :—दानं = दान देना, भोगो = भोग (उपभोग) करना, नाशः = नाश हो जाना , ति ो = तीन, गतयो = गतियाँ, भवन्ति = होती हैं , धनस्य = धन का, यो = जो, न = नहीं, ददाति = देता है, न = नहीं , भुंक्ते = खाता है (भोग) करता है, तस्य = उसकी, तृतीया = तीसरी, गति = नाश, भवति = होता है, ।

भावार्थ :—दान करना, भोग करना तथा नष्ट हो जाना, यह धन की तीन गति (अवस्था) होती है, जो व्यक्ति अपने धंन का न तो दान करता है और न तो स्वयं ही उसका उपभोग करता है उसका धन अवश्य तीसरी गति नाश को प्राप्त हो जाता है।

(128)

।। पृथ्वी रूपी गाय : प्रजारूप बछड़ा ।।

राजन् दुधुक्षसि यदि क्षितिधेनुमेनां ।
तेनाद्य वत्समिव लोकममुं पुषाण ।
तस्मिंश्च सम्यगनिशं परिपोष्यमाणे ।
नाना फलैः फलति कल्पलतेव भूमिः ।।

शब्दार्थ :—राजन् = हे राजा, दुधुक्षसि = दुहना चाहते हो, यदि = निश्चय , क्षितिधेनुमेनां = धरती रूपी गाय को, तेनाद्य = तो आज,

वत्समिव = बछड़े के समान , लोकममुं = इस लोक (प्रजा) को, पुषाण = पालो, तस्मिंश्च = और उसके, सम्यग् = अच्छी तरह से, अनिशं = रात दिन, परिपोष्यमाणे = पालन करने पर, नानाफलैः =अनेक प्रकार के फलों से, फलति = फलती है, कल्पलतेव = कल्पवृक्ष के समान, भूमिः = पृथिवी ।

भावार्थ :– हे राजा ! यदि तुम पृथिवी रूपी गाय को दुहना चाहते हो तो प्रजा रूपी बछड़े का पालन पोषण करो । यदि तुम प्रजा रूपी बछड़े का अच्छी तरह से पोषण करोगे तो पृथिवी स्वर्गीय कल्पलता की तरह आपको नाना प्रकार के फल देगी ।

(129)

।। वारौंना इव राजनीति ।।

सत्याऽनृता च परुषा प्रियवादिनी च,
हिंस्रा दयालुरपि चार्थपरा वदान्या ।
नित्यव्यया प्रचुर नित्यधनागमा च,
वेश्यांगनेव नृप नीतिरनेकरूपा ।।

शब्दार्थ :– सत्या = सत्यवादिनी, अनृता = झूठ बोलने वाली, च = और , परुषा = कठोर,, प्रियवादिनी = प्रिय बोलने वाली , च = और , हिंस्रा = हिंसा करने वाली,, दयालुरपि = दया करने वाली भी, च = और , अर्थपरा = लोभी , वदान्या = उदार, नित्यं = हमेशा, व्यया = अपव्यय करने वाली, प्रचुर = खूब, नित्यधनागमा = प्रतिदिन धन संचय करने वाली , च = और वेश्यांगनेव = वेश्या रूपी नायिका के समान, नृपनीतिः = राजा की नीति (राजनीति) , अनेकरूपा = अनेक रूपों वाली, ।

भावार्थ :—राजा की नीति (राजनीति) सदा एक समान नहीं रहती है उसकी नीति एक वेश्या की भांति अनेक रूप धारण करती है । कहीं राजा सत्य बोलता है तो कहीं मिथ्या बोलता है कहीं कठोर भाषण करता है तो कहीं मधुर भाषण करता है तो कहीं निष्ठुरता करता है तो कहीं दयालुता दिखाता है । कहीं लोभी सा व्यवहार करता है तो कहीं उदारता दिखाता है । कहीं बिना विचारे अन्धाधुन्ध खर्च करता है कहीं संग्रह करता है ।

(1 3 0)

।। नीतिमान् कूटनीतिज्ञ कौन ।।

न राम सदृशो राजा पृथिव्यां नीतिमानभूत् ।
न कूटनीति तत्वज्ञः श्री कृष्णसदृशो नृपः ।।

शब्दार्थ :—न = नहीं, राम = रामचन्द्र , सदृशो = समान , राजा = नृपति (प्रजापालक) , पृथिव्यां = पृथिवी में , नीतिमान् = नीति वाले , अभूत् = हुए, न = नहीं , कूटनीति = कूटनीति वाले , तत्वज्ञः = तत्व को जानने वाले, श्रीकृष्ण = वासुदेव, सदृशो = समान, नृपः = राजा, ।

भावार्थ :—इस पृथिवी पर श्री रामचन्द्र जी के समान नीतिमान् और श्री कृष्ण के समान कूटनीतिज्ञ दूसरे राजा नहीं हुए । यह अपेक्षिक कथन है ।

(1 3 1)

।। किसकी राज सेवा व्यर्थ ।।

विद्या कीर्तिः पालनं ब्राह्मणानां,
दानं भोगो मित्र संरक्षणं च।

येषामेते षड़गुणा न प्रवृत्ताः,
कोऽर्थस्तेषां पार्थिवोपाश्रयेण ।।

शब्दार्थ :– विद्या = शिक्षा, कीर्तिः = यश, पालनं = पालन , ब्राह्मणानां = ब्राह्मणों का, दानं = दान , भोगो = भोग , मित्रसंरक्षणं = मित्र का सरंक्षण, च = और, येषामेते = जिनमें ये , षड्गुणाः = छह गुण, न = नहीं, प्रवृत्ताः = हैं , कोऽर्थ = क्या प्रयोजन है, तेषां = उनकी , पार्थिवोपाश्रयेण = राजा के आश्रय से ।

भावार्थ :–जिन पुरूषों में विद्या कीर्ति, ब्राह्मणों का पालन, दान देना, स्वयं भोग करना, मित्रों की रक्षा करना, ये छह गुण नहीं हुए उनकी राज सेवा व्यर्थ है। यह अपेक्षिक कथन है ।

(132)

।। जितना मिले उतने में संतोष ।।

यद् धात्रा निजभालपट्टलिखितं स्तोकं महद्वाधनम् ।
तत् प्राप्नोति मरूस्थलेऽपि नितरां मेरौ ततो नाधिकम्।
तद् धीरोभव वित्तवत्सु कृपणां वृत्तिं वृथा मा कृथाः ।
कूपेपश्य पयोनिधावपि घटो गृह्णाति तुल्यं जलम् ।।

शब्दार्थ :–यद् = जो, धात्रा = विधाता ने , निजभालपट्टलिखितं = अपने ललाट पर (भाग्य में) लिख दिया है , स्तोकं = थोड़ा, महद् = अधिक, वा = अथवा , धनम् = धन, तत् = वह , प्राप्नोति= प्राप्त होता है , मरूस्थलेऽपि = मरूस्थल में भी,, नितरां = निश्चय, मेरौ = मेरू पवर्त पर भी, ततो = उससे, नाधिकं = अधिक नहीं, तद् = तो , धीरो = धैर्यशाली, भव = होवो, वित्तवत्सु = धनवानों के सामने, कृपणां = दीनता की , वृत्रिं = याचना, वृथा = व्यर्थ में, मा = नहीं,, कृथा = करो,

कूपे = कूंवे में, पश्य = देखो, पयोनिधावपि = समुद्र में भी, घटो = घड़ा, गृह्णाति = ग्रहण करता है, तुल्यं = समान (अपनी क्षमता के अनुसार ही) जलम् = जल को ।

भावार्थ :— थोड़ा या अधिक विधाता (भाग्य) ने जितना धन तुम्हारे भाग्य में लिख दिया है उतना तुम्हे निश्चय ही मरूस्थल में भी मिल जायेगा, उससे अधिक तुम को सुमेरू पर्वत पर भी नहीं मिल सकता है इसलिए सन्तोष करों और धनिकों के सामने व्यर्थ में दीनता से याचना मत करो क्योंकि देखो घड़ा समुद्र और कूंवे से समान (अपने सामर्थ्य के अनुसार उतना ही) जल ग्रहण करता है ।

(133)

।। होनी – अनहोनी ।।

नहि भवति यन्न भाव्यं भवति च भाव्यं विनापि यत्नेन ।
करतल गतमपि नश्यति यस्य तु भवितव्यता नास्ति ।।

शब्दार्थ :—न = नहीं, हि = निश्चय, भवति = होता है, यन्न = जो नहीं, भाव्यं = होनहार, भवति = होता है, च = और भाव्यं = होनहार, विनापि = बिना, यत्नेन = परिश्रम के भी,, करतलगतमपि = हाथ में आयी हुयी भी वस्तु, नश्यति = नष्ट हो जाती है, यस्य = जिसकी, तु = निश्चय, भवितव्यता = होनहार, नास्ति=नहीं है, ।

भावार्थ :—जो होनहार नहीं है वह नहीं होता है और जो होनहार है वह विना उपाय किए भी हो जाता है और जो हमारे भाग्य में नहीं है वह हाथ में आकर भी नष्ट हो जाता है ।

(134)

।। दुर्जनों के स्वाभाविक गुण ।।

अकरूणत्वमकारण विग्रहः,
परधने परयोषिति च स्पृहा।
सुजन बन्धुजनेष्वसहिष्णुता,
प्रकृति सिद्धमिदंहि दुरात्मनाम्।।

शब्दार्थ :—अकरूणत्व = किसी पर दया न करना, अकारण = बिनाकारण के, विग्रहः = झगड़ा करना , परधने = दूसरे के धन पर, परयोषिति = दूसरे की स्त्री पर, च = और, स्पृहा = चाह (अभिलाषा), सुजन—बन्धु—जनेष्व —सहिष्णुता = सज्जनों एवं अपने रिस्तेदारों की उन्नति को नहीं सह पाना, प्रकृति = स्वभाव से , सिद्ध = निश्चित, इदं = यह, हि = है, दुरात्मनाम् = दुष्ट लोगों का, ।

भावार्थ :—किसी पर दया न करना, बिना वजह लड़ाई—झगड़ा करना, परधन और पर स्त्री पर मन चलाना, सज्जनों और अपने (लोगों) रिस्तेदारों की उन्नति से कुढ़ना, ये छह अवगुण दुष्टों के स्वभाव से ही होते है।

(135)

।। कलम, पुस्तक, स्त्री, दूसरों को न दें ।।

लेखनी पुस्तिका नारी पर हस्ते न दीयताम् ।
आगता दैवयोगेन नष्टा भ्रष्टा च मर्दिता ।।

शब्दार्थ :—लेखनी = कलम , पुस्तिका = पुस्तक, नारी = स्त्री, परहस्ते = दूसरे के हाथ में, न = नहीं , दीयताम् = दो , आगता = आती

(वापस), दैवयोगेन = भाग्य (मुश्किल) से, नष्टा = नष्ट (खराब) होकर, भ्रष्टा = फट करके (फटे रूप में), च = और, मर्दिता = मर्दित हुयी,, ।

भावार्थ :– अपनी कलम, पुस्तक तथा स्त्री कोदूसरों के उपयोग हेतु नहीं देना चाहिए क्यों कि ऐसा करने पर इन तीनों की पुनः वापसी मुश्किल से होती है । यदि वापसी हो भी जाये तो कलम जरूर बिगड़ी हुयी मिलेगी तथा पुस्तक अवश्य फटी हुयी (मचकायी) मिलेगी तथा स्त्री भी उपयोग की हुयी (वापरी) होगी । ऐसी पूरी संभावना है ।

(136)

।। क्या हो तो क्या नहीं चाहिये ।।

लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः,
सत्यं चेत्तपसा चकिं शुचिमनो यद्यस्ति तीर्थेन किम्।
सौजन्यं यदि किं गुणैः स्वमहिमा यद्यस्ति किं मण्डनैः,
सद् विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना।।

शब्दार्थ :–लोभश्चेत् = लोभ हो तो, अगुणेन = दुर्गुणों से, किं = क्या प्रयोजन, पिशुनता = परनिन्दा या चुगलखोरी, यद्यस्ति = यदि है तो, किं = क्या (प्रयोजन) है, पातकैः = (अन्य) पापों से, सत्यं = सत्य, चेत् = है तो, तपस्या = तपस्या की, च = और, किं = क्या (आवश्यकता), शुचि = शुद्धता, मनो = मन की, यद्यस्ति = यदि है तो, तीर्थेन = तीर्थ से, किम् = क्या प्रयोजन है, सौजन्यं = सज्जनता, यदि = है तो, किं = क्या प्रयोजन है, गुणैः = गुणों से, स्वमहिमा = अपनी प्रतिष्ठा, यद्यस्ति = यदि है तो, किं = क्या प्रयोजन है, मण्डनैः = आभूषणों से, सद्विद्या = अच्छी विद्या, यदि = है तो, किं = क्या प्रयोजन है, धनैः = धन से,

अपयशो = अपयश, यद्यस्ति = यदि हैं तो, किं = क्या प्रयोजन है, मृत्युना = मृत्यु में।

भावार्थ :– यदि लोभ है तो और अवगुणों की क्या जरूरत ? यदि परनिन्दा या चुगलखोरी है तो और पापों की क्या आवश्यकता ? यदि सत्य है तो तपस्या कि क्या जरूरत है ? यदि मन शुद्ध है तो तीर्थों से क्या लाभ ?यदि सज्जनता है तो अन्य गुणों की क्या जरूरत ? यदि कीर्ति है तो अन्य आभूषण की क्या आवश्यकता ? यदि उत्तम विद्या है तो धन का क्या प्रयोजन ?यदि अपयश है तो मृत्यु की क्या आवश्यकता है।

(137)

।। दुर्जनों को सद्‌गुण में भी अवगुण दिखते हैं।।

जाड्यं ह्रीमति गण्यते व्रतरूचौ दम्भः शुचौ कैतवं,
शूरे निर्घृणता मुनौ विमतिता दैन्यं प्रियालापिनी ।
तेजस्विन्यवलिप्तता मुखरता वक्तर्यशक्तिः स्थिरे,
तत्को नाम गुणी भवेत्स गुणिनां यो दुर्जनैनांकितः।।

शब्दार्थ :–जाड्यं = कम बोलना, ह्रीमति = लज्जावानों में, गण्यते = गिना (माना) जाता है, व्रतरूचौ = व्रत–उपवास में, दम्भः = धूर्तता , शुचौ = पवित्रता में, कैतवं = ढोंग (नाटक), शूरे = शूरवीर में , निर्घृणता = निर्दयता , मुनौ = चुप रहने में , विमतिता = बुद्धिहीनता, दैन्यं = दीनता, प्रियालापिनी = प्रिय बोलने में , तेजस्विन्यवलिप्तता = तेजस्वी लोगों में अंहकार, मुखरता = अधिक बोलना , वक्तरि = वक्ता में, अशक्तिः = शक्तिहीनता, स्थिरे = शान्त पुरूष में , तत्को = तो कोई भी, नाम = निश्चय, गुणी = गुणवाला हो, स = वह, गुणिनां = गुणवानों का (गुण), दुर्जनैः = दुष्टों के द्वारा, नांकितः = नहीं कलंकित किया गया।

भावार्थ :—लज्जावानों को मूर्ख, व्रत—उपवास करने वालों को ठग, पवित्रता से रहने वालों को धूर्त, शूरवीरों को निर्दयी , चुप रहने वालों को बुद्धिहीन, मधुरभाषियों को दीन, तेजस्वी को अहंकारी , वक्ताओं को बकवादी, और शान्त पुरूष को असमर्थ कहकर दुष्टों ने गुणियों के कौन से गुण को कलंकित नहीं किया ? .

(138)

।। सेवक के सद्गुण भी दुर्गण बन जाते हैं।।

मौनान्मूकः प्रवचनपटुश्चाटुको जल्पको वा,
धृष्टः पार्श्वे वसति च तदा दूरतश्चाप्रगल्भः ।
क्षान्त्या भीरुर्यदि च सहते प्रायशो नाभिजातः,
सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ।।

शब्दार्थ :—मौनात् = मौन (चुप) रहने से, मूकः = मूक है, प्रवचनपटुः = बोलने मे चतुर हो तो , चाटुको = चाटुकार है या , जल्पको = बकवादी है , धृष्टः = ढीठ है, पार्श्वे = पास में, वसति = रहता है , च = और , दूरतः = दूर रहने से , च = और (या निश्चित), अप्रगल्भः = मूर्ख है, क्षान्त्या = क्षमाशील होने पर , भीरूः = डरपोक है, यदि च = और यदि, न सहते = नहीं सहता है , प्रायशो = प्रायः करके, नाभिजातः = अच्छे कुल का नहीं है, सेवाधर्मः = सेवा का धर्म, परमगहनः = बहुत कठिन है, योगिनामपि = योगियों के लिए भी , अगम्यः = कठिन है

भावार्थ :—नौकर यदि चुपचाप रहता है तो मालिक उसे गूंगा कहता है यदि बोलता है तो उसे बक वादी कहता है यदि दूर रहता है तो मूर्ख है, यदि पास रहता है तो ढीठ है, यदि खरी खोटी सह लेता है तो उसे डरपोक

कहता है, यदि नहीं सहता है तो उसे नीच कुल का कहता है, इस प्रकार सेवा का धर्म बहुत कठिन है यह योगियों के लिए भी अगम्य है ।

(139)

।। किसके बिना कौन खराब ।।

शशि दिवसधूसरो गलित यौवना कामिनी ,
सरो विगतवारिजं मुखमनक्षरं स्वाकृतेः ।
प्रभुर्धनपरायणः सततदुर्गतः सज्जनों ,
नृपांगबणतः खली मनसि सप्त शल्यानि में।।

शब्दार्थ :—शशि = चन्द्रमा, दिवस = दिन में , धूसरो = मलिन, गलित = बीती हुयी, यौवना = जवानी वाली , कामिनी = स्त्री , सरो = तालाब, विगतवारिजं = बिना कमल के , मुखमनक्षरं = बिना अक्षर (विद्या) ज्ञान का मुख, स्वाकृतेः = अच्छे रूप वाले का , प्रभुः = स्वामी , धनपरायणः = कंजूस , सतत = निरन्तर , दुर्गतः = दुःखी (दरिद्री), सज्जन = अच्छा व्यक्ति , नृपांगणतः = राजसभा में, खली = दुष्ट का होना, मनसि = मन में , सप्त = सात , शल्यानि = कांटे, में = मुझको, ।

भावार्थ :—दिन का मलिन चन्द्रमा, यौवनहीन कामिनी , कमल हीन सरोवर, निरक्षर रूपवान, कंजूस स्वामी या राजा, सज्जन का दरिद्री होना, राज्यसभा में दुष्ट का होना, ये सातों हमारे दिल में कांटे की तरह चुभते हैं ।

(140)

।। सेवा करके धन पाना अच्छा नहीं ।।

वरं वनं वरं भैक्ष्यं वरं भारोपजीवनम् ।
वरं व्याधिर्मनुष्याणां नाधिकारेण सम्पदः।

शब्दार्थ :—वरं = अच्छा है, वनं = वन में रहना , वरं = अच्छा है, भैक्ष्यं = भिक्षा मांगकर खाना, वरं = अच्छा है , भारोप जीवनं = बोझा (भार) उठाकर जीना, वरं = अच्छा है , व्याधिः = रोग, मनुष्याणां = मनुष्यों को, न = बिना , अधिकारेण = अधिकार के , सम्पदः = सम्पत्ति प्राप्त करना, ।

भावार्थ :—वन में रहना अच्छा है भीख मांगकर खाना अच्छा है, बोझ (भार) उठाकर जीना अच्छा है, रोगी रहना अच्छा है किन्तु बिना अधिकार सेवा करके धन प्राप्त करना अच्छा नहीं है ।

(141)

।। दुर्जन की संगतिः दुःखदायी ।।

उद्भासिताखिलखलस्य विश्रृंखलस्य ।
प्राग्जातविस्तृत निजाधम कर्मवृत्ते : ।
दैवादवाप्तविभवस्य गुणद्विषोऽस्य ।
नीचस्य गोचर गतैः सुखमास्यते कैः।।

शब्दार्थ :— उद्भासित = विकसित, अखिल = सम्पूर्ण , खलस्य = दुष्टों में, विश्रृंखलस्य = उद्दण्ड का, प्राक् = पूर्व से ही , जात =उत्पन्न , विस्तृत = प्रसिद्ध, निज = अपने , अधम = नीच, कर्म = कार्य (की), वृत्तेः = व्यवहार से, दैवादवाप्त = भाग्य से ही प्राप्त, विभवस्य = वैभव वाले, गुणद्विषोस्य = गुण द्वेषी का, नीचस्य =अधम के, गोचरगतैः =दृष्टि में रहने से, सुखम् = सुख, आस्यते=प्राप्त किया जाता है , कैः = किसके द्वारा ।

भावार्थ :— जो दुष्टों का सिरताज हैं, जो निरंकुश या मर्यादा रहित है, जो पूर्वजन्म के कुकर्म के कारण पर ले सिरे का दुराचारी है, जो सौभाग्य से

धनवान् है, किन्तु उत्तम गुणों से द्वेष रखता है, ऐसे नीच के अधीन रहकर कौन सुखी हो सकता है ।

(142)

।। दुर्जन सज्जन की मित्रता कैसी ।।

आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण
लध्वी पुरा बृद्धिमती च पश्चात् ।
दिनस्य पूर्वार्द्धपरार्द्धभिन्ना
छायेव मैत्री खल सज्जनानाम् ।

शब्दार्थ :—आरम्भगुर्वी = शुरू में बढ़ने वाली , क्षयिणी = क्षय होने वाली , क्रमेण = क्रम से, लध्वी = संक्षिप्त, पुरा = पहले , बृद्धिमती = बढ़ने वाली , पश्चात् = बाद में, दिनस्य = दिन की , पूर्वार्द्ध = दोपहर से पहले की, परार्द्ध = दोपहर के बाद की , भिन्ना = अलग–अलग, छायेव = छाया के समान , मैत्री = मित्रता, खलसज्जनानाम् = दुष्टों और सज्जनों की होती है, ।

भावार्थ :—दुष्टों की मित्रता, दोपहर से पहले की छाया के समान शुरू में बहुत लम्बी होती है और पीछे क्रमशः घटती चली जाती है, किन्तु सज्जनों की मैत्री दोपहर बाद की छाया के समान पहले बहुत थोड़ी सी होती है और पीछे क्रमशः बढ़ने वाली होती है ।

(143)

।। सज्जनों की मित्रता : ईख के रस जैसी।।

ईक्षोरग्रात् क्रमशः पर्वणि यथा रसो विशेषः ।
तद् वत् सज्जन मैत्री विपरीताना तु विपरीता।।

शब्दार्थ :—ईक्षोः = गन्ने के, अग्रात् = अग्र (अगले) हिस्से में, क्रमशः = क्रम से, पर्वणि = पर्वों में, यथा = जैसे, रसो = रस, विशेषः = अधिक होता है, तद्वत् = उसी प्रकार, सज्जन = सज्जनों की, मैत्री = मित्रता (होती है), विपरीतानां = विपरीत लोगों का, तु = तो, विपरीता = विपरीत होती है।

भावार्थ :—ईख के अगले हिस्से में रस कम होता है ज्यों ज्यों आगे चलियेगा रस अधिक मिलता है । सज्जनों की मित्रता ठीक ऐसी ही होती है । दुर्जनों की इसके विपरीत होती है ।

(144)

।। महान् बनने के उत्तम गुण ।।

वा छा सज्जन संगमे परगुण प्रीतिर्गुरौ नम्रता,
विद्यायां व्यसनं स्वयोषिति रतिः लोकापवादादभयम् ।
भक्तिः ब्रह्मणि शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिः खलेष्वेते,
येषु वसंति निर्मल गुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः ।।

शब्दार्थ :—वा छा = अभिलाषा, सज्जनसंगमे = सज्जन की संगति में, परगुण = दूसरे के गुणों में, प्रीतिः = प्रेम, गुरौ = गुरू (बड़ो) के प्रति, नम्रता = नम्रभाव, विद्यायां = विद्या में, व्यसनं = रूचि, स्वयोषिति = अपनी स्त्री में, रतिः = आसक्ति, लोकापवादात् = लोक निन्दा से, भयम् = डरना, भक्ति = साधना, ब्रह्मणि = ब्रह्म (परमात्मा) में, शक्तिः = शक्ति (सामर्थ्य) आत्मदमने = मन को वश करने में, संसर्गमुक्तिः = संसर्ग से मुक्ति, खलेषु = खलों के प्रति, एते = ये, येषु = जिनमें, वसंति = रहते हैं, निर्मलगुणः = निर्मलगुण (प्रसंशनीय गुण), तेभ्यो = उन, नरेभ्यो = नरों के लिए, नमः = नमस्कार है ।

भावार्थ :—सज्जनों की संगति की अभिलाषा, पराये गुणों में प्रीति, बड़ों के साथ नम्रता, विद्या का व्यसन, अपनी स्त्री में आसक्ति, लोक निन्दा से भय, परमात्मा की साधना, मन को वश में करने की शक्ति और दुष्टों की संगति का त्याग, ये उत्तम गुण जिनमें हैं उन्हें हम प्रणाम करते हैं ।

(145)

।। बड़े की सेवामें क्या मिलता है ।।

अभिवादनशीलस्य नित्यं बृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि तस्य बर्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम् ।

शब्दार्थ :— अभिवादन = प्रणाम (नमस्कार), शीलस्य = करने वाले का , नित्यं = प्रतिदिन, बृद्धोपसेविनः = अपने से बड़े का आदर और सेवा करने वाले का, चत्वारि = चार वस्तु, तस्य = उसका, बर्धन्ते = बढ़ता है, आयु = उम्र, विद्या = शिक्षा, यशः =महत्व , बलम् = पराक्रम, ।

भावार्थ :— अपने से बड़े का जो हमेशा सेवा करता है तथा प्रणाम करता है उसकी आयु विद्या और यश तथा बल ये चारों बढ़ता है ।

(146)

।। सज्जनों के स्वाभाविक गुण ।।

प्रदानं प्रच्छन्नं गृहमुपगते सम्भ्रमविधिः ,
प्रियं कृत्वा मौनं सदसि कथनं चात्युपकृतेः ।
अनुत्सेको लक्ष्म्यां निरभिभवसाराः परकथाः ,
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम् ।।

ब्दार्थ :—प्रदानं = दान, प्रच्छन्नं = गुप्त रखे, गृहमुपगते = घर जाने र, सम्भ्रमविधिः = आदर करें, प्रियं = भलाई , कृत्वा = करके , मौनं चुप (रहे), सदसि = सभा में , कथनं = कहे, च = और , अत्युपकृते अत्यन्त उपकार को, अनुत्सेको = गर्व (अभिमान) का नहीं होना , क्ष्म्यां = धन होने पर, निरभिभवसाराः = निन्दा रहित, परकथाः = सरों की बात (करना) , सतां = सज्जनों को, केनोद्दिष्टं = किसने खाया, विषम—मसिधाराव्रतमिदम् = अत्यन्त कठिन तलवार की धार र चलने के समान यह है।

ावार्थ :—दान को गुप्त रखना, घर आये का सत्कार करना, पराये का ला करके चुप रहना, दूसरे के उपकार को सबके सामने कहना, धनी ाकर गर्व नहीं करना और पराई बात निन्दा रहित कहना, ये उत्तम गुण ज्जनों (महात्माओं) में स्वभाव से ही होते हैं ।

(147)

।। सभा में परनिन्दा न हो ।।

परपरिवादः परिषदि न कथञ्चित् पण्डितेनवक्तव्यः।
सत्यमपि तन्न वाच्यं यदुक्तमसुखावहं भवति ।।

ब्दार्थ :—परपरिवादः = पराई निन्दा, परिषदि = सभा में , न = नहीं , थंचित् = किसी भी हालत में, पण्डितेन = बुद्धिमान् के द्वारा, वक्तव्यः कहना चाहिए, सत्यमपि = सत्य भी , तत् = वह , न = नहीं , वाच्यं कहना चाहिए , यदुक्तं = यदि कहा जाये तो, असुखावहं = सुख नहीं ने वाला भवति = होता है।

भावार्थ :– सभा में बुद्धिमान् को पराई निन्दा किसी भी हालत में नहीं करनी चाहिए, जो बात कहने से दूसरे को बुरी लगे वह सत्य होने पर भी न कहे क्योंकि वह सुखदायी नहीं होता है।

(148)

।। महान् लोगों की शोभा कैसे ? ।।

करे श्लाध्यः त्यागः शिरसि गुरूपादप्रणयिता,
मुखे सत्या वाणी विजयि भुजयोर्वीर्यमतुलम् ।
हृदि स्वस्था वृत्तिः श्रुतमधिगतैक व्रत फलम्,
विनाप्यैश्वर्येण प्रकृतिमहतां मण्डनमिदम् ।।

शब्दार्थ :–करे = हाथ में, श्लाध्यः = प्रशंसनीय, त्यागः = दान की भावना (स्वभाव), शिरसि = शिर से, गुरूपादप्रणयिता = गुरू के (श्रेष्ठ जनों के) चरणों में झुकना , मुखे = मुंह में , सत्या = सच्ची , वाणी = बोली , विजयि = जयशील, भुजयोः = बाहों में , वीर्यम् = पराक्रम, अतुलम् = अद्वितीय हो , हृदि = हृदय में, स्वस्था = स्वच्छ, वृत्तिः = व्यवहार की भावना , श्रुतम् = शास्त्र, अधिगत = ज्ञान, एक = एक मात्र , व्रतफलम् = साधना का फल हो (तो), बिनाप्यैश्वर्येण = बिनाधन के भी, प्रकृतिमहतां = प्रकृति स्वभाव से महान् लोगों का, मण्डनम् = आभूषण, इदम् = यह है।

भावार्थ :–बिना ऐश्वर्य के भी महापुरूषों के हाथ दान से, मस्तक गुरूजनों के प्रति शिर झुकाने से, मुख सत्य बोलने से, जय चाहने वाली दोनों भुजाएं अतुल पराक्रम से, हृदय शुद्ध वृत्ति से और कान शास्त्रों (के श्रवण) से शोभा योग्य होते हैं ।

(149)

।। पुत्र–पत्नी–मित्र कौन ।।

यः प्रीणयेत्सुचरितैः पितरं स पुत्रो ।
यद् भर्तुरेव हितमिच्छति तत्कलत्रम्।
यन्मित्रमापदि सुखे च समक्रियं यद्।
एतत् त्रयं जगति पुण्यकृतो लभन्ते।।

शब्दार्थ :—यः = जो, प्रीणयेत् = प्रसन्न रखे , सुचरितैः = अच्छे चरित्र से, पितरं = पितामाता को, स = वह , पुत्रो = पुत्र है , यद् = जो, भतुरेव = पति का ही , हितमिच्छति = भलाई चाहती है, तत् = वही , कलत्रम् = स्त्री है, तत् = वह , मित्रम् = मित्र है, आपदि = आपत्ति में, सुखे च = और सुख में , समक्रियं = समान रहे, यद् = जो, एतत् = यह , त्रयं = तीनो, जगति = संसार में, पुण्यकृतो =पुण्य शाली को, लभन्ते =प्राप्त होता है ।

भावार्थ :—अपने उत्तम चरित्र से पिता को प्रसन्न रखे वही पुत्र है, अपने पति का सदा सर्वदा भला चाहे वही स्त्री है, और जो सम्पद् और विपद् दोनों अवस्थाओं में एक सा रहे वही मित्र है । जगत में ये तीनों भाग्यवानों को ही मिलते हैं ।

(150)

।। संसार पूज्य के गुण ।।

नम्रत्वेनोन्नमन्तः परगुण कथनैः स्वान्गुणान् ख्यापयन्तः,
स्वार्थान्सम्पादयन्तो वितत प्रियतरारम्भयत्नाः परार्थे ।
क्षान्त्यैवाक्षेपरूक्षा क्षरमुखरमुखान् दुर्जनान् दूषयन्तः,
सन्तः साश्चर्यचर्या जगतिबहुनताःकस्य नाभ्यर्थनीयाः ।।

शब्दार्थ :—नम्रत्वेन = नम्रता से, उन्नमन्त = ऊँचे होते हैं , परगुण कथनैः = दूसरे के गुणों को कहकर के, स्वान् = अपने, गुणान् = गुणों को , ख्यापयन्तः = प्रसिद्ध कर लेते हैं , स्वार्थान् = अपने स्वार्थ (मतलब) को , सम्पादयन्तो = सम्पन्न करते हैं, वितत = निरन्तर, प्रियतरारम्भयत्नाः = भलाई करने के प्रयास से , परार्थे = दूसरे के लिए, क्षान्त्यैव = क्षमा के द्वारा , आक्षेपरूक्षाक्षरमुखरमुखान् = आक्षेप करने वाले रूखे अक्षरों से युक्त मुख वाले, दुर्जनान् = दुष्टों को, दूषयन्तः = दूषित करते हुए , सन्तः = महापुरूष लोग, साश्चर्यचर्या = आश्चर्य जनक आचरण, जगति = संसार में , बहुनताः = अधिक विनम्र, कस्य = किसके लिए, न = नहीं, अभ्यर्थनीयाः = आदरणीय होते ।

भावार्थ :—अपनी नम्रता से ऊँचे होने वाले तथा पराये गुणों का कीर्तन करके अपने गुणों को प्रसिद्ध करने वाले एवं दूसरे की भलाई में अपना दिल लगाकर अपना मतलब बनाने वाले, और निन्दा करने वाले दुष्टों को अपनी क्षमाशीलता से ही कलंकित या लज्जित करने वाले अपने आश्चर्य कारक आचरण से सभी के लिए माननीय सन्त पुरूष संसार में किसके पूजनीय नहीं हैं ।

(1 5 1)

।। परोपकारी मनुष्यों का स्वभाव ।।

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्‌गमैः ।
नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो धनाः ।
अनुद्धताः सत्पुरूषाः समृद्धिभिः ।
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ।।

शब्दार्थ :—भवन्ति = होते हैं, नम्राः = नम्र (विनम्र) , तरवः = वृक्ष, फलोगमैः = फलों के आ जाने से, नवाम्बुभिः = नवीन जलधारण कर लेने से, अदूर = पास में , विलम्बिनो = लटकने वाले, धनाः = बादल, अनुद्धता = उद्धत, सत्पुरूषाः = सज्जन , समृद्धिभिः = सम्पत्ति से, स्वभाव = व्यवहार , एवैष = ही यह , परोपकारिणाम् = परोपकारियों का होता है, ।

भावार्थ :—जैसे वृक्ष फल लगने से नीचे की ओर झुक जाते हैं । वर्षा के जल से भरे हुए नवीन मेघ जमीन की ओर झूमने (झुकने) लगते हैं, वैसे ही सत्पुरूष भी सम्पत्ति पाकर उद्धत नहीं होते हैं बल्कि नम्र हो जाते हैं, क्योंकि परोपकारी मनुष्यों का यही स्वभाव होता है ।

(152)

।। नाशवान् वस्तु में आस्था न करें ।।

अनित्यं यौवनं रूपं जीवितं द्रव्य संचयः ।
ऐश्वर्यं प्रियसंवासो मुह्येत् तत्र न पंडितः ।
कायः सन्निहितापायः सम्पदः पदमापदाम् ।
समागमाः सापगमाः सर्वमुत्पादि भंगुरम् ।।

शब्दार्थ :—अनित्यं = नाशवान् हैं, यौवनं = जवानी , रूपं = रूप सौन्दर्य, जीवनं = जिन्दगी, द्रव्य संचयः = सम्पत्ति , ऐश्वर्यं = वैभव, प्रियसंवासो = मित्र के (प्रिय व्यक्ति के) साथ निवास, मुह्येत् = मोहित न होवे , तत्र = उसमें, न = नहीं , पंडितः = बुद्धिमान्, कायः = शरीर , संनिहितापायः = नाश की सम्भावना से युक्त, सम्पदः = धन, पदम्=स्थान (निमित्त) हैं , आपदाम् = आपत्ति का, समागमाः = उत्पत्ति शीलता या आगमन, सापगमाः =नाश शील या गमन वाला , सर्वं,= सभी, उत्पादि =उत्पन्न होने वाले, भंगुरम् =नाशवान् हैं ।

भावार्थ :—यौवन, रूप, जीवन, धन संचय, ऐश्वर्य और मित्र के साथ रहना,ये सभी अनित्य हैं इसी कारण से ज्ञानवान् को इनसे मोहित नहीं होना चाहिए। क्योंकि शरीर नाशवान् है, सम्पत्ति आपत्ति का घर है,जो आता है वह जाता है,तथा उत्पन्न होने वाले सभी वस्तु नष्ट होते हैं।

(153)

।। कान हाथ और देह की शोभा किससे ।।

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन दानेन पाणिर्न तु कंकणेन ।
विभाति कायः करूणापराणाम् परोपकारैर्न तु चन्दनेन।।

शब्दार्थ :—श्रोत्रं = कान, श्रुतेनैव = शास्त्र ज्ञान से , न = नहीं, कुण्डलेन = कुण्डल (आभूषण) से, दानेन = दान से , पाणिः = हाथ, न = नहीं , तुं = निश्चित, कंकणेन = कंकण (कंगन आभूषण) से, विभाति=सुशोभित होता है , कायः=शरीर, करूणापराणां= दयालु स्वभाव वालों का , न=नहीं, तु=निश्चित, चन्दनेन =चन्दन से।

भावार्थ :—दयालु पुरूषों के कानों की शोभा शास्त्र सुनने से होती है, कुण्डल पहने से नहीं, हाथों की शोभा दान करने से होती है कंगन धारण करने से नहीं, देह की शोभा परोपकार करने से होती है चन्दन लगाने से नहीं ।

(154)

।। परहित में धन एवं प्राणों की कुर्बानी ।।

धनानि जीवितं चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत् ।
सन्निमित्ते वरं त्यागो विनाशे नियते सति ।।

शब्दार्थ :—धनानि = धन, जीवितं =जीवन , चैव = और, परार्थे= दूसरे के लिए, परार्थे = दूसरों के लिए , प्राज्ञ = बुद्धिमान्, उत्सृजेत् = त्याग देवें , सन्निमित्ते = अच्छे निमित्त में, वरं = श्रेष्ठ है, त्यागो = त्यागना, विनाशे = नाश, नियते = निश्चित, सति = होने पर ।

भावार्थ :—पंडितों (बुद्धिमानों) को चाहिए कि धन और प्राण पराये के लिए त्याग दें । क्योंकि शरीर का नाश तथा धन का व्यय होना अवश्यम्भावी है इसलिए अच्छे निमित्त से अर्थात् सज्जनों (साधु पुरूषों) के लिए, त्याग ही भला है ।

(155)

।। सच्चा मित्र कौन हैं ? ।।

पापान्निवारयति योजयते हिताय ,
गूह्यं च गूहति गुणान् प्रकटीकरोति।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले,
सन् मित्र लक्षणमिंद प्रवदन्ति सन्तः ।।

शब्दार्थ :—पापात् = पापों से, निवारयति = हटाता है , योजयते = लगाता है, हिताय = हित के लिए, गूह्यं = गुप्त बात को , च = निश्चय , गूहति = छिपाता है , गुणान् = गुणों को , प्रकटीकरोति = प्रकट करता है, आपद्गतं = आपत्ति में पड़ने पर , च = निश्चित, न = नहीं , जहाति = छोड़ता है, ददाति = देता है, काले = समय पर , सन्मित्रलक्षणमिदं = अच्छे मित्र का यह लक्षण है , प्रवदन्ति = कहते हैं, सन्तः = सन्त (सज्जन) लोग ।

भावार्थ :—सन्तों ने कहा है कि अच्छा मित्र वही जो मित्र को बुरे कार्यों से रोकता है, तथा अच्छे कामों में लगाता है, तथा गोपनीय बातों को

छिपाता है और गुणों को प्रकट करता है तथा विपत्ति काल में साथ नहीं छोड़ता है और समय पड़ने पर यथा शक्ति धन देता है ।

(156)

।। गुणहीन का गुण प्रदर्शन।।

असती भवति सलज्जा क्षारं नीर च शीतलं भवति ।
दम्भी भवति विकेकी प्रियवक्ता भवति धूर्तजनः ।।

शब्दार्थ :—असती = जो पतिव्रता नहीं होती है, भवति = (वह) होती है, सलज्जा = लज्जावती, क्षारं = खारा, नीर च = पानी और, शीतलं = ठंडा (शीतल), भवति = होता है, दम्भी = पाखण्डी भवति = होता है, विवेकी = ज्ञानी, प्रियवक्ता = प्रिय बोलने वाला, भवति = होता है, धूर्तजनः = धूर्त (दगाबाज) व्यक्ति ।

भावार्थ :—असती लज्जावती होती है, खारा पानी शीतल होता है, पाखण्डी ज्ञानी होता है, और धूर्त प्रियवक्ता होता है ।

(157)

।। निर्मल अन्तःकरण वाले के वचन।।

अनवरत परोपकार व्यग्रीभवदमलचेतसां महताम्।
आपातकाटवानि स्फुरन्ति वचनानि भेषजानीव ।।

शब्दार्थ :—अनवरत = निरन्तर, परोपकार = दूसरे की भलाई हेतु व्यग्नीभवत् = व्यग्र (व्याकुल) होते हैं (ऐसे), अमलचेतसां = शुद्धमन वाले, महताम् = महापुरूषों के, आपातकाटवानि = प्रारम्भ से ही कटु लगने वाले, स्फुरन्ति = हितकर होते हैं, वचनानि = बोली, भेषजानीव = औषध के समान।

भावार्थ :—जिन लोगों का अन्तःकरण (मन) शुद्ध होता है तथा निरन्तर परोपकार की चिन्ता में लगे रहते हैं ऐसे लोगों के वचन आरम्भ में कड़वी दवा की तरह लगते हैं पर अन्त में जिस तरह कड़वी दवा का फल अच्छा होता है उसी तरह उनकी कड़वी बातों का फल भी मंगलकारी होता है ।

(158)

।। मित्र द्रोही, कृतध्नविश्वासघाती नरकगामी।।

मित्रद्रोही कृतघ्नश्च यश्च विश्वासघातकः ।
ते नराः नरकं यान्ति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।।

शब्दार्थ :— मित्रद्रोही = मित्र से द्रोह करने वाले, कृतघ्नश्च = एहसान न मानने वाले, यश्च = और जो, विश्वासघातकः = विश्वासघात करता है, ते = वे, नराः = लोग , नरकं = नरक को , यान्ति = जाते हैं , यावत् = जब तक, चन्द्रदिवाकरौ = चन्द्रमा और सूर्य (हैं) ।

भावार्थ :—मित्र से द्रोह करने वाला तथा पराया एहसान न मानने वाला और विश्वासघात करने वाला, जब तक सूर्य और चन्द्रमा है तब तक नरक में रहता है ।

(159)

।। कौन सा मित्र त्याज्य।।

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।
वर्जयेत् तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम्।।

शब्दार्थ :—परोक्षे = पीठ पीछे, कार्यहन्तारं = कार्य बिगाड़ने वाला, प्रत्यक्षे = सामने, प्रियवादिनम् = प्रिय बोलने वाला, वर्जयेत् = छोड़ देवे , तादृशं = ऐसे, मित्रं = मित्र को , विषकुम्भं = विषघड़े में हो , पयोमुखम् = दूध मुख (उपर) में होवें ।

भावार्थ :– आँख से ओझल होने पर काम बिगाड़ने वाले और सामने मीठी मीठी बातें करने वाले मित्र को, मुँह पर दूध और भीतर जहर भरे घड़े के समान त्याग देना चाहिए।

(160)

।। अल्पकालीन भोग्य कौन ?।।

अभ्रच्छाया, खलप्रीतिः सिद्धमन्न च योषितः ।
किंचित् कालोपभोग्यानि यौवनानि धनानि च।।

शब्दार्थ :–अभ्रच्छाया = बादलों की छाया, खलप्रीतिः = दुष्टों की प्रीति , सिद्धमन्न च = और पका हुआ अन्न, योषितः = स्त्री, किंचित् = कुछ , कालोपभोग्यानि = समय के लिए ही भोग्य होते हैं , यौवनानि = जवानी, धनानि = धन , च = और ।

भावार्थ :–बादलों की छाया, दुष्टों की प्रीति, पका हुआ अन्न, स्त्री , जवानी और धन ये थोड़े समय तक ही भोग्य होते हैं ।

(161)

।। संकट का साथी ही मित्र ।।

आपत्काले तु सम्प्राप्ते यन्मित्रं मित्रमेव तत्।
बृद्धिकाले तु सम्प्राप्ते दुर्जनोऽपि सुहृद् भवेत्।।

शब्दार्थ :–आपत्काले = आपत्ति के समय में, तु = निश्चय , सम्प्राप्ते = आने पर, यन्मित्रं = जो साथ देवें (मित्रता निभायें), मित्रमेव = मित्र है ,

तत् = वह, बृद्धिकाले = उन्नति (विकास) के समय , तु = निश्चित , सम्प्राप्ते =आने पर, दुर्जनोऽपि = दुर्जन भी, सुहृत् = मित्र, भवेत् = हो जाता है।

भावार्थ :– आपत्ति के समय जो मित्रता निभाता है वही मित्र है अच्छे दिनों में तो दुर्जन भी मित्र बन जाते हैं।

(162)

।। सत्पुरूष-मनुष्य-राक्षस, कौन ?।।

एके सत्पुरूषाः परार्थघटकाः स्वार्थं परित्यज्य ये ।
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्था विरोधेन ये ।
तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये।
ये निघ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे ।।

शब्दार्थ :– एके = कुछ, सत्पुरूषाः = सज्जन लोग , परार्थघटकाः = दसूरे का हित करते हैं, स्वार्थं = अपने हित को, परित्यज्य = त्याग करके, ये = जो , सामान्यास्तु = सामान्य लोग तो , परार्थमुद्यमभृतः = दूसरों के हित को करते हैं , स्वार्थाविरोधेन = अपने कार्य को न बिगाड़ते हुए, ये =जो, तेऽमी = वे लोग, मानुषराक्षसाः = मनुष्य रूप में रक्षस हैं, परहितं = दूसरे के हित को, स्वार्थाय = अपने हित के लिए, निघ्नन्ति = नष्ट करते हैं, ये = जो लोग, निघ्नन्ति = नष्ट करते हैं, निरर्थकं = बिना वजह, परहितं = दूसरे के हित को, ते = वे, के = कौन हैं, न=नहीं, जानीमहे=जानते हैं ।

भावार्थ :–जो लोग अपने स्वार्थ का ख्याल न करके दूसरे का ही भला करते हैं वे सचमुच सत्पुरूष हैं, जो अपना स्वार्थ न बिगाड़ते हुए पराया हित भी करते हैं वे मनुष्य हैं अर्थात् साधारण पुरूष हैं, और जो अपने स्वार्थ के

लिए पराया काम बिगाड़ते है वे मनुष्य रूप में राक्षस हैं, और जो लोग व्यर्थ में ही परायी हानि करते हैं उन्हें क्या कहें यह हमारी समझ में नहीं आता हैं ।

(163)

।। नीच का स्वभाव।।

घातयितुमेव नीचः परकार्यं वेत्ति न प्रसाधयितुम् ।
पातयितुमस्ति शक्तिः वायोः न चोन्नमितुम् ।।

शब्दार्थ :—घातयितुमेव = बिगाड़ने वाला होता है, नीचः = नीच व्यक्ति, परकार्यं = दूसरे का कार्य, वेत्ति = जानता है, न = नहीं, प्रसाधयितुम् = बनाना, पातयितुम् = गिराने में, अस्ति = है, शक्तिः = सामर्थ्य, वायोः = वायु का, न = नहीं, च = और, उन्नमितुम् = उठाने में, ।

भावार्थ :—नीच पराये काम को बिगाड़ना जानता है किन्तु बनाना नहीं जानता है, वायु वृक्ष को उखाड़ सकती है पर जमा नहीं सकती । जैसे चूहा अन्न की पिटारी को गिरा सकता है पर उठा नहीं सकता है, बिल्ली अगर दूध को पी नहीं सकती है तो लुढ़का तो सकती है अर्थात् नीचों का स्वभाव ऐसा ही होता है।

(164)

।। सत्पुरूषों के लक्षण।।

तृष्णां छिन्धि भजक्षमां जहि मदं पापे रतिं मा कृथाः,
सत्यं ब्रूह्यनुयाहि साधुपदवीं सेवस्व विद्वज्जनम् ।
मान्यान्मानय विद्विषोप्प्यनुनय प्रख्यापय स्वान्गुणान्,
कीर्तिं पालय दुःखिते कुरू दयामेतत्सतां लक्षणम्।।

शब्दार्थ :—तृष्णां = आशा को, छिन्धि = नष्ट कर दो , भजक्षमां = क्षमा को धारण करो , जहि = त्याग दो, मदं = मद को, पापे = पाप में , रतिं = आसक्ति को, मा = नहीं , कृथाः = करें , सत्यं = सत्य को, ब्रूहि = बोलो, अनुयाहि = प्राप्त करों, साधुपदवीं = साधु पदवी (सम्बोधन) को, सेवस्य = सेवा करो, विद्वज्जनम् = विद्वानों की , मान्यान् = आदरणीय लोगों को , मानय = मानो, विद्विषोऽपि = शत्रु के प्रति भी, अनुनय = विनय, प्रख्यापय = रखो, स्वान्गुणान् = अपने गुणों को, कीर्तिं = यश को, पालय = पालन (स्थिर) करो, दुःखिते = दुःखी जन के प्रति, कुरू = करो, दयाम् = दया (उदारता) को, एतत् = यह, सतां = सज्जनों का, लक्षणम् = लक्षण है ।

भावार्थ :— तृष्णा को त्याग दो, क्षमा का सेवन करो, मद को छोड़ दो, पापों से प्रीति मत करो, सच बोलो, साधुओं की रीति पर चलो, पंडितों की सेवा करो, आदरणीयों का आदर करो, शत्रु को भी प्रसन्न रखो, अपने गुणों की प्रसिद्धि करो, अपनी कीर्ति का पालन करो, दीन दुःखिया पर दया करो क्योंकि ये सब सत्पुरूषों के लक्षण हैं ।

(165)

।। बंधन-मुक्ति-नरक-स्वर्ग, क्या है ?।।

बद्धो हि को यो विषयानुरागी ,
को वा विमुक्तिः विषये विरक्तिः ।
को वास्ति घोरो नरकस्स्वदेहः ,
तृष्णाक्षयः स्वर्गपदं किमस्ति ।।

शब्दार्थ :—बद्धः = बधा हुआ, हि = निश्चित , को = कौन, यो = जो, विषयानुरागी = विषयों का अनुरागी (आसक्ति वाला), को = क्या , वा = अथवा , विमुक्तिः = मुक्ति है, विषये = सांसारिक विषयों में , विरक्तिः

= वैराग्य, को = कौन, वा = निश्चय, अस्ति = है, घोरो = अत्यन्त दुःखदायी, नरकः = नरक (दुःख देने वाला), स्वदेहः = अपना शरीर, तृष्णाक्षयः = इच्छाओं का नाश, स्वर्गपदं = स्वर्ग का स्थान, किमस्ति = क्या है ।

भावार्थ :—बन्धन में कौन है ? जो विषयों मे आसक्त है । विमुक्ति क्या है ? विषयों का त्याग । घोर नरक क्या है ? अपनी देह । स्वर्ग क्या है ? तृष्णा (इच्छा) का नाश । यह आपेक्षिक कथन है ।

(166)

।। तृष्णा बढ़ती जाती है ।।

जीर्य्यन्ते जीर्य्यतः केशाः दन्ताः जीर्य्यन्ति जीर्य्यतः,
जीर्य्यतश्चक्षुषी श्रोत्रे तृष्णैका तरूणायते ।
इच्छति शती सहस्रं सहस्त्री लक्षमीहते ,
लक्षाधिपस्तथा राज्यं राज्यस्थः स्वर्गमीहते।।

शब्दार्थ :—जीर्य्यन्ते = जीर्ण (पुराने) हो जाते है, जीर्य्यतः = जीर्ण (पुराने) होने से , केशाः = बाल, दन्ताः = दाँत, जीर्य्यन्ति = जीर्ण हो जाते हैं, जीर्य्यतः = जीर्ण (पुराने) होने से , जीय्यर्तः= जीर्ण (पुराने) हो जाते हैं , चक्षुषी = दोनों नेत्र , श्रोत्रे = दोनों कान , तृष्णैका = एक तृष्णा ही, तरूणायते = जवान होती जाती है, इच्छति = चाहता है, शती = सौ वाला, सहस्रं = हजार, सहस्त्री = हजार वाला, लक्षम् = लाख को , ईहते = चाहता है , लक्षाधिपः = लक्षका स्वामी, तथा = और, राज्यं = राज्य को, राज्यस्थः = राज्य को प्राप्त, स्वर्गम् = स्वर्ग को, ईहते = चाहता है ।

भावार्थ :—जीर्ण (पुराने) होने से केश भी जीर्ण हो जाते हैं, जीर्ण होने से दांत भी जीर्ण हो जाते हैं , आँख और कान भी जीर्ण हो जाते हैं , किन्तु एक तृष्णा (इच्छा) जवान होती जाती है । सौ वाला हजार, हजार वाला लाख चाहता है जिसे लाख प्राप्त है वह राज्य चाहता है राज्य को प्राप्त स्वर्ग चाहता है।

(1 6 7)

।। सत्पुरूष के लक्षण।।

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णाः ,
त्रिभुवन—मुपकार श्रेणिभिः प्रीणयन्तः ।
पर—गुण—परमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यम् ,
निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ।।

शब्दार्थ :—मनसि = मन में, वचसि = वचन में , काये = शरीर में, पुण्यपीयूषपूर्णाः = पुण्य रूपी अमृत भरा है, त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः = तीनों लोकों को अपने उपकार से, प्रीणयन्तः = तृप्त करते हुए , परगुणपरमाणून् = दूसरे के गुण रूपी परमाणुओं को, पर्वतीकृत्य = बढ़ा चढ़ा करके , नित्यं = प्रतिदिन , निजहृदि = अपने हृदय में, विकसन्तः = विकास करते हुए, सन्ति = है , सन्तः = महापुरूष, कियन्तः=कितने।

भावार्थ :—जिनके तन मन वचन पुण्यरूपी अमृत से भरा हुआ है, जो अपने उपकारों से तीनों लोकों को तृप्त करते हैं, और जो दूसरे के परमाणु समान गुणों को पर्वत के समान बढ़ाकर अपने हृदय में प्रसन्न होते हैं ऐसे सत्पुरूष इस जगत् मे विरले ही हैं ।

(168)

।। नीति पथ पर अविचल धीर।।

महत्वमेतन् महतां नयालंकारधारिणः ।
न मु चन्ति यदारब्धं कृच्छ्रेऽपि व्यसनोदये।।

शब्दार्थ :—महत्वम् = महानता, एतत् = यह है , महतां= महान् लोगों का, नय—अलंकार—धारिणः = नीति रूपी अंलकार को धारण करने वालों का , न = नहीं, मु चन्ति = छोड़ते हैं , यदारब्धं = जो आरम्भ कर देते हैं , कृच्छ्रेऽपि = दुःख में भी , व्यसनोदये =विपत्ति आने पर भी ।

भावार्थ :— नीति का भूषण धारण करने वाले महात्माओं का यही महत्व है कि वे घोर विपत्ति पड़ने पर भी अपने आरम्भ किये काम को नहीं छोड़ते हैं ।

(169)

।। अपना काम बनाना, बुद्धिमत्ता।।

अपमानं पुरस्कृत्य मानं कृत्वा च पृष्टतः ।
स्वार्थ—मम्युद्धरेत् प्राज्ञः स्वार्थ—भ्रंशो हि मूर्खता।।

शब्दार्थ :— अपमानं = अपमान को, पुरस्कृत्य = आगे करके , मानं = मान को, कृत्वा = करके , च = निश्चित, पृष्टतः = पीछे , स्वार्थम् = अपने मतलब को, उद्धरेत् = करे , प्राज्ञः = बुद्धिमान् , स्वार्थ—भ्रंशो = अपने काम का बिगाड़ना, हि = निश्चित, मूर्खता = मूर्खता है ।

भावार्थ :— अपमान को आगे और मान को पीछे रखकर, बुद्धिमान् को अपना कार्य सिद्ध करना चाहिए । अपना काम न बनाना ही मूर्खता है ।

(170)

।। किसका क्या भूषण ।।

ऐश्वर्यस्य विभूषणं सुजनता शौर्यस्य वाक्संयमो,
ज्ञानस्यापशमः श्रुतस्य विनयो वित्तस्य पात्रे व्ययः।
अक्रोधः तपसः क्षमा प्रभवितुर्धर्मस्य निर्व्याजता,
सर्वेषामपि सर्वकारणमिदं शीलं परं भूषणम् ।।

शब्दार्थ :—ऐश्वर्यस्य = सम्पत्ति का, विभूषणं = भूषण (शोभा)°, सुजनता = सज्जनता है, शौर्यस्य = शूरता का, वाक् संयमो = वाणी का संयम, ज्ञानस्या—पशमः = ज्ञान का भूषण शांति है , श्रुतस्य = ज्ञान का (आभूषण) विनयो = विनय है, वित्तस्य = धन का , पात्रे = सुपात्र के लिए, व्ययः = खर्च, अक्रोधः = क्रोध नहीं करना, तपसः = तपस्वी का, क्षमा = क्षमा रखना, प्रभवितुः = प्रभावशाली का , धर्मस्य = धर्म का , निर्व्याजता = कपट रहित होना, सर्वेषामपि = सभी का, सर्वकारणमिदं = सव कारणों का कारण, शीलं = शील, परं = सर्वश्रेष्ठ, भूषणम् = आभूषण है ।

भावार्थ :—ऐश्वर्य का भूषण सज्जनता, शूरता का भूषण अपमान रहित बात कहना, ज्ञान का भूषण शान्ति, शास्त्र देखने का भूषण विनय, धन का भूषण सुपात्र—दान, तप का भूषण क्रोधहीनता, प्रभुता का भूषण क्षमा, और धर्म का भूषण छलरहित होना है किन्तु अन्य सब गुणों का कारण और सर्वोत्तम भूषणशील है ।

(171)

।। धीर न्याय मार्ग में अविचल ।।

निन्दन्तु नीति–निपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ।।

शब्दार्थ :–निन्दन्तु = निन्दा करें, नीति–निपुणाः = नीति में निपुण, यदि वा = अथवा, स्तुवन्तु = स्तुतिकरें, लक्ष्मीः = सम्पत्ति, समाविशतु = आवे, गच्छतु वा = अथवा जाये, यथेष्टम् = अपनी इच्छानुसार, अद्यैव = आज ही, वा = अथवा, मरणमस्तु = मृत्यु हो जाये, युगान्तरे वा = अथवा युग के बाद, न्यायात्–पथः = न्याय के मार्ग से, प्रविचलन्ति = विचलित होते हैं, पदं = पग मात्र भी, न = नहीं, धीराः = धीर पुरूष, ।

भावार्थ :–नीति निपुण लोग निन्दा करें चाहे स्तुति करें, लक्ष्मी आवे चाहे चली जावे, प्राण अभी नष्ट हो जाये अथवा युगों के बाद, परन्तु धीर पुरूष न्याय मार्ग से जरा भी इधर–उधर नहीं होते हैं।

(172)

।। धर्म में अडिग ।।

सपदि विलयमेतु राजलक्ष्मीरूपरिपतन्त्वथवा कृपाणधाराः ।
अपहरतुतरां शिरः कृतान्तोमम तु मतिर्न मनागुपैतु धर्मात् ।

शब्दार्थ :–सपदि = शीघ्र ही, विलयमेतु = नष्ट हो जाये, राजलक्ष्मी = राजसम्पदा, उपरि–पतंतु = उपर गिर जाये, अथवा = निश्चित, कृपाणधाराः = तलवार की धार, अपहरतुतरां = अपहरण कर लेवे, शिरः = शिर को, कृतान्तो = यमराज, मम = मेरी, तु = किन्तु, मतिः

= बुद्धि, न = नहीं, मनाग् = थोडी भी, अपैतु = हटे धर्मात् = धर्म से ।

भावार्थ :—चाहे शीघ्र ही राजलक्ष्मी नष्ट हो जाये, कृपाण धारा ऊपर से गिरे, चाहे यमराज शिर का छेदन करे, परन्तु मेरा मन धर्म से जरा भी न डिगे ।

(173)

।। धीर पुरूष अविचल ।।

चलन्ति गिरयः कामं युगान्तपवनाहताः ।
कृच्छ्रेऽपि न चलत्येव धीराणां निश्चलं मनः ।।

शब्दार्थ :—चलन्ति = चलते हैं, गिरयः = पर्वत , कामं = पर्याप्त रूप से, युगान्त—पवना—हताः = युगान्त पवन से आहत होकर, कृच्छ्रेपि = कष्ट में भी, न = नहीं , चलत्येव = चलता है, धीराणां = महापुरूषों के, निश्चलं = निश्चल , मनः = मन ।

भावार्थ :—प्रलय कालीन पवन से आहत पर्वत भी चलते हैं किन्तु संकट काल में भी महापुरूषों का मन चलायमान नहीं होता हैं।

(174)

।। कृत्य को छोड़ना नहीं, अकृत्य करना नहीं।।

अकृत्यं नैव कर्तव्यं प्राणत्यागेऽपि संस्थिते ।
न च कृत्यं परित्यज्य धर्म एष पुरातनः ।।

शब्दार्थ :—अकृत्यं = नहीं करने योग्य, नैव = नहीं , कर्तव्यं = करना चाहिए, प्राणत्यागेऽपि = प्राण संकट के, संस्थिते = उपस्थित होने पर भी, न च = और नहीं , कृत्यं = अपने योग्य कर्म को, परित्यज्य = छोड़ना चाहिए, धर्म एष = यह धर्म है , पुरातन = प्राचीन ।

भावार्थ :—प्राण नाश का समय उपस्थित होने पर भी निन्दित कर्म नहीं करना चाहिए तथा करने योग्य कर्म को बिना पूरा किए छोड़ना भी नहीं चाहिए ।

(175)

।। आभूषण-तीर्थ-त्याज्य-श्रव्य-कौन ? ।

किं भूषणाद् भूषणमस्ति शीलम्,
तीर्थं परं किं स्वमनो विशुद्धिः ।
किमत्र हेयं कनकं च कान्ता ,
श्राव्यं सदा किं गुरुदेव वाक्यम् ।।

शब्दार्थ :—किं = क्या, भूषणात् = भूषण से भी , भूषणमस्ति = भूषण है, शीलम् = शील है, तीर्थम् = तीर्थ, परं = श्रेष्ठ , किं = क्या, स्वमनो = अपने मन की, विशुद्धिः = पवित्रता , किम् = क्या, अत्र = इस संसार में, हेयम् = त्यागने योग्य है, कनकं = सोना, च = और, कान्ता = कामिनी , श्राव्यं = सुनने योग्य , सदा = हमेशा, किं = क्या है, गुरुदेव वाक्यम् = गुरू की बात ।

भावार्थ :— इस संसार में सबसे उत्तम आभूषण शील है, तथा सबसे उत्तम तीर्थ मन की शुद्धता है । और त्यागने योग्य इस संसार मे कांचन और कामिनी है, तथा सुनने योग्य गुरू की बात है ।

(176)

।। चूहा खुद सर्प के मुहं में गया ।।

भग्नाशस्य करण्डपीडिततनोर्म्लानेन्द्रियस्य क्षुधा ,
कृत्वाखुर्विवरं स्वयं निपतितो नक्तं मुखे भोगिनः ।

तृप्तस्तंत्पिशितेन सत्वरमसौ तेनैव यातः पथा ,
लोकाः पश्यत दैवमेव हि नृणां वृद्धौ क्षये कारणम्।।

शब्दार्थ :–भग्नाशस्य = नष्ट आशा वाले, करण्ड– पीडित–तनोः = पिटारी में पीडित शरीर वाला , म्लानेन्द्रियस्य = मुरझाये इन्द्रियों वाले, क्षुधा = भूख, कृत्वा = करके, आखु = चूहा , विवरं = विवर को, स्वयं = अपने आप, निपतितो = पड़ गया, नक्तं = रात में, मुखे = मुख में, भोगिनः = सर्प के, तृप्तः = तृप्त हो जाता है, तत्पिशितेन= उस के मांस से, सत्वरमसौ = शीघ्र ही यह, तेनैव = उसी से , यातः = चला जाता है, पथा = (विवर) मार्ग से, लोकाः = संसार, पश्यत = देखो, दैवमेव = भाग्य ही,, हि = निश्चित, नृणां = मनुष्यों का, बृद्धौ = विकास में, क्षये = क्षय में, कारणं = कारण है ।

भावार्थ :–एक सर्प पिटारी में बंद पड़ा हुआ है जीवन से निराश, शरीर से शिथिल और भूख से व्याकुल हो रहा था । उस समय एक चूहा रात के समय कुछ खाने की चीज पाने की आशा से, पिटारी में छेद करके घुसा और सर्प के मुंह में गिरा । सर्प उसे खाकर तृप्त हो गया और उसी चूहे के किये हुए छेद की राह से बाहर निकल गया और स्वतंत्र तथा आजाद हो गया, इस घटना को देखकर मुनष्यों को अपनी वृद्धि और क्षय का एकमात्र कारण भाग्य (कर्म) को समझना चाहिए।

(177)

।। स्वयं ही कर्त्ताभोक्ता ।।

स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वयं तत्फलमश्नुते ।
स्वयं भ्रमति संसारे स्वयं तस्माद् विमुच्यते ।।

शब्दार्थ :–स्वयं = अपने आप, कर्म = कार्य को , करोति = करता है, आत्मा = जीव, स्वयं = अपने आप, तत् = वह , फलमश्नुते = फल को भोगता है, स्वयं = अपने आप, भ्रमति = घूमता है , संसारे = लोक में, स्वयं = अपने आप, तस्माद् = उससे, विमुच्यते = छुटकारा पाता है ।

भावार्थ :–जीव स्वयं ही कर्म करता है स्वयं ही उसका फल भोगता है स्वयं ही संसार में भ्रमता है और स्वयं ही उससे छुटकारा पाता है ।

(178)

।। अपराध के फल ।।

आत्मापराधवृक्षस्य फलान्येतानि देहिनाम् ।
द्रारिद्र–रोग–दुःखानि बन्धन व्यसनानि च ।।

शब्दार्थ :–आत्मा–पराध–वृक्षस्य = जीव के अपराध रूपी वृक्ष के, फलान्येतानि = ये फल हैं , देहिनाम् = शरीर धारियों के, द्रारिद्रय–रोग–दुःखानि = द्ररिद्रता रोग और दुःख, च = और, बन्धन व्यसनानि = बन्धन और व्यसन है ।

भावार्थ :–द्ररिद्रता, रोग, दुःख, बन्धन और विपत्ति ये सब मनुष्य के अपराध रूपी वृक्ष के फल होते हैं ।

(179)

।। विपत्ति किसकी नहीं रहती ।।

पतितोऽपि कराघातैः उत्पतत्येव कन्दुकः ।
प्रायेण साधुवृत्तानाम् अस्थायिन्यो विपत्तयः ।।

शब्दार्थ :—पतितोऽपि = गिरने पर भी, कराघातैः = हाथ के ठोकर से, उत्पतत्येव = उछलता ही है, कन्दुकः = गेद, प्रायेण = प्रायः करके, साधुवृत्तानाम् = अच्छे आचरण वालो की, अस्थायिन्यो = सदा नहीं रहती हैं, विपत्तयः = विपत्तियाँ,।

भावार्थ :—जिस तरह हाथ से गिराने पर भी गेंद ऊँची ही उठती है उसी तरह साधु–वृत्ति पर चलने वालों की विपत्ति भी सदा नहीं रहती है।

(180)

।। आलस्य शत्रु, पुरुषार्थ बंधु ।।

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुः यः कृत्वा नावसीदति ।।

शब्दार्थ :—आलस्यं = आलस्य, हि = निश्चित, मनुष्याणां = मनुष्यों का, शरीरस्थो = शरीर में रहने वाला, महान् = बड़ा, रिपु = शत्रु हैं, नास्ति – उद्यम – समो = नहीं है उद्यम के समान, बन्धुः = बन्धु, यः = जिसको, कृत्वा = करके, नावसीदति = दुःख नहीं पाता है।

भावार्थ :—आलस्य मनुष्यों के शरीर में रहने वाला घोर शत्रु है और उद्योग के समान उन का कोई बन्धु नहीं है क्योंकि उद्योग करने से मुनष्य के पास दुःख नहीं आते हैं।

(181)

।दरिद्री, धनवान्, जीवित मृतवत् एवं सुखदायी कौन ?।।

को वा दरिद्रो हि विशालतृष्णा
श्रीमांश्च को यस्य समस्ततोषः।

जीवन्मृतः कस्तु निरूद्यमो यः
को वाऽमृतस्स्यात् सुखदा निराशा।।

शब्दार्थ :—को वा = कौन है, दरिद्रो = दरिद्री हि = निश्चित, विशालतृष्णा = विशालतृष्णा वाला , श्रीमांश्च = श्रीमान्, को = कौन , यस्य = जिसको, समस्त = सम्पूर्ण, तोषः = संतोष हो , जीवन्मृतः = जीते हुए मृत, कस्तु = कौन है, निरूद्यमो = बिना उ़द्यम वाला, यः = जो, को = कौन, वा = हैं , अमृतः = अमृत है , सुखदा = सुख देने वाली , निराशा = आशा का त्याग करना ।

भावार्थ :—दरिद्री कौन है ? जिसे तृष्णा बहुत है, धनवान् कौन है ? जिसे सम्पूर्ण संतोष है, जीता हुआ ही मृतक कौन है ? जो उद्यम—रहित या आलसी है । अमृत क्या है ? सुखदायी आशा का त्याग ।

(182)

।। किसका क्या नष्ट होता है ।।

स्तब्धस्य नश्यति यशो विषमस्य मैत्री,
नष्टेन्द्रियस्य कुलमर्थपरस्य धर्मः ।
विद्याधने व्यसनिनः कृपणस्य सौख्यम्,
राज्यं प्रमत्तसचिवस्य नराधिपस्य ।।

शब्दार्थ :—स्तब्धस्य=आलसी का, नश्यति =नष्ट होता है , यश = प्रतिष्ठा, विषमस्य = दुष्ट की,, मैत्री = मित्रता, नष्टेन्द्रियस्य = नष्टेन्द्रिय पुरूष का कुलम् = वंश परम्परा, अर्थपरस्य = अर्थ लोभी का, धर्मः = धर्म , विद्याधने = विद्या और धन, व्यसनिनः = व्यसनी का, कृपणस्य =कंजूस का, सौख्यम्=सुख, राज्यं=राज, प्रमत्त— सचिवस्य = मतवाले सचिव वाले , नराधिपस्य = राजा का ।

भावार्थ :—आलसी का यश नष्ट हो जाता है दुष्टों की मैत्री नष्ट हो जाती है, नष्टेन्द्रिय पुरूष का कुल, अर्थलोभी का धर्म, व्यसनी की विद्या और धन, कंजूस का सुख, जिसका मंत्री मतवाला हो, उस राजा का राज्य नष्ट हो जाता है ।

(183)

।। संसार की असारता ।।

चेतोहाराः युवतयः स्वजनोऽनुकूलः ।
तद् बान्धवाः प्रणयगर्वगिरश्चभृत्याः ।
गर्जन्ति दन्तिनिवहास्तरलाः तुरैंःाः।
संमीलने नयनयोः नहि किंचिदस्ति ।।

शब्दार्थ :—चेतोहाराः = मन का हरण करने वाली, युवतयः = युवतियाँ (स्त्रियाँ) , स्वजनः = आत्मीय लोग, अनुकूलः = आज्ञाकारी हों, तद् = वे, बान्धवाः = बन्धुजन, प्रणय—गर्व—गिरश्च = प्रेम—युक्त—वाणी वाले, भृत्याः = नौकर है, गर्जन्ति = गर्जना करते हैं , दन्ति = हाथी, निवहाः = समूह, तरलाः = चंचल, तुरंगाः = घोड़े, संमीलने = बन्द करने पर, नयनयोः = नेत्रों के, नहि = न , किंचित् = कुछ भी, अस्ति = है ।

भावार्थ :—मन को हरण करने वाली (मनोहर) युवतियाँ , अनुकूल परिजन बान्धवों, अनुरक्ति (भक्ति) रखने वाले नौकर, गरजते हुए हाथियों का समूह, तथा चंचल घोड़े आदि सब कुछ होने पर भी आँख बंद कर लेने पर कुछ भी नहीं है ।

(184)

।। बड़प्पन के बाधक ।।

आलस्यं स्त्रीसेवा सरोगता जन्मभूमिवात्सल्यम्।
संतोषो भीरूत्वं षड़ व्याघाताः महत्वस्य ।।

शब्दार्थ :—आलस्य = आलसी होना, स्त्री सेवा = स्त्री का (अधिक) सेवन , सरोगता = रोग युक्त होना, जन्मभूमि—वात्सल्यम् = जन्मभूमि से लगाव, संतोष = संतोषी प्रवृत्ति, भीरूत्वं = डरपोक स्वभाव, षड् = छह, व्याघाताः = विघ्न हैं (नाशकर्ता हैं), महत्वस्य = बड़प्पन के ।

भावार्थ :—आलस्य, स्त्री सेवा, (राग) अस्वस्थता, जन्मभूमि से प्रेम, संतोष और भय ये छह बड़प्पन को नाश करने वाले हैं। यह कथन सापेक्षता से है।

(185)

।। स्त्री के दोष घोड़े के गुण ।।

चपलता बहुचंचलता तथा शंकिता बहुभोजनता ननु ।
रोषदोषसदावनितासु वै, एतदेव गुणाः हयरत्नसु ।।

शब्दार्थ :—चपलता = बहुत बोलना, बहु = अधिक , चंचलता = चंचल रहना, तथा = और, शंकिता = हमेशा शंका करते रहना, बहुभोजनता = अधिक भोजन करना, ननु = निश्चित ही, रोष = क्रोध करना, दोष = अवगुण, सदा= हमेशा, वनितासु = स्त्रियों में (कहा गया है), वे = निश्चय ही, एतदेव = यही, गुण = गुण होते हैं, हयरत्नसु = अच्छे घोड़ो में ।

भावार्थ :—ज्यादा चंचल होना, अधिक बोलना, हमेशा शंकालु रहना, क्रोध का अधिक होना, भोजन अधिक करना, ये पाँच स्त्रियों में दोष कहे गये है और ये ही पाँच घोड़ों में गुण माने गये है ।

(186)

।। शत्रु से भी लाभ ।।

जीवन्तु में शत्रुगणाः सदैव,
येषां प्रसादात् सुविचक्षणोऽहम्।
ये ये च मां वै प्रति बाधयन्ति,
ते ते च मां हि प्रतिवोधयन्ति।।

शब्दार्थ :—जीवन्तु = जीवति रहे, में = मेरे , शत्रुगणाः = शत्रु लोग, सदैव = हमेशा, येषां = जिनके, प्रसादात् = कृपा से, सुविचक्षणोऽहम् = मैं बुद्धिमान् हो गया हूँ, ये ये च = और जो जो, मां = मुझको, वै = निश्चय ही, प्रतिवाधयन्ति = बाधा पहुँचाते हैं, ते ते च मां = और वे वे मुझको, हि = निश्चय ही, प्रतिवोधयन्ति = बुद्धिमान् बनाते हैं (सावधान करते हैं)।

भावार्थ :—मेरे शत्रु लोग सदा जीवित रहें जिनकी कृपा से मैं चतुर बन गया हूँ तथा जो जो लोग मुझे बाधा पहुँचाते है वे लोग मुझे सचेत कर देते हैं ।

(187)

।। क्या प्रकाशित न करें ।।

अर्थनाशं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च ।
वंचनं चापमानं च मतिमान् न प्रकाशयेत्।।

शब्दार्थ :—अर्थनाशं = अर्थ (धन) का नाश, मनस्तापं = मन का सन्ताप , गृहे = घर में, दुश्चरितानि = घर के दुश्चरित्रता (चरित्र कंलक), च = और, वंचनं = ठगे जाने को, च = और, अपमानं = अपमान (मानहानि), च = और, मतिमान् = बुद्धिमान्, न = नहीं, प्रकाशयेत् = प्रकाशित करें ।

भावार्थ :-(धन) अर्थ के नाश को, मन के संताप को, घर में चारित्रिक कलंक की बात को, और यदि किसी ने अपने को ठग लिया हो अर्थात् धोखा दिया हो तथा अपने अपमान को बुद्धिमान् व्यक्ति प्रकाशित नहीं करें ।

(188)

।। पूर्व संचित कर्म ही फल प्रदायी ।।

नैवाकृतिः फलति नैव कुलं न शीलं ,
विद्याऽपि नैव न च यत्नकृतापि सेवा।
भाग्यानि पूर्वतपसा खलु सञ्चितानि ,
काले फलन्ति पुरूषस्य यथैव वृक्षाः।।

शब्दार्थ :-नैवाकृतिः = आकृती नहीं, फलति = फलती है , नैव = नहीं, कुलं = कुल, न = नहीं, शीलं = शील, विद्यापि = विद्या भी , नैव = नहीं , न च = और नहीं, यत्नकृतापि = यत्न से की हुयी, सेवा = सेवा, भाग्यानि = भाग्य, पूर्वतपसा = पूर्व की तपस्या से, खलु = निश्चित, सञ्चितानि = संचित होते हैं, काले = समय पर, फलन्ति = फल देते हैं, पुरूषस्य = पुरूष के, यथैव = जिस प्रकार, वृक्षाः = वृक्ष ।

भावार्थ :-मनुष्य की सुन्दर आकृति, उत्तम कुल, शील, विद्या, और खूब अच्छी तरह की गयी सेवा, ये सब कुछ फल नहीं देते, किन्तु पूर्व जन्म के कर्म ही समय पर वृक्ष की तरह फल देते हैं ।

(189)

।। पुण्य सदा रक्षक ।।

वने रणे शत्रु जलाग्नि मध्ये,
महार्णवे पर्वतमस्तके वा।

सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा,
रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि।।

शब्दार्थ :—वने = वन में, रणे = युद्ध में , शत्रु—जल—अग्नि— मध्ये = शत्रु, पानी, आग के बीच में, महार्णवे = बहुत बड़े समुद्र में, पर्वतमस्तके वा = अथवा पर्वत की चोटी पर, सुप्तं = सोया हुआ, प्रमत्तं = मतवाला को, विषमस्थितं = संकट में पड़े हुए को, वा = भी, रक्षन्ति = रक्षा करते हैं, पुण्यानि = पुनवानी, पुराकृतानि = पहले के किए हुए ।

भावार्थ :—वन में, रण में, शत्रुओं में, आग में, समुद्र में, अथवा पर्वत की चोटी पर, सोते हुए, प्रमत्तावस्था में, विपत्ति के समय में मनुष्य की रक्षा पूर्व जन्म के पुण्य ही करते हैं ।

(190)

।। भाग्यवान् और भाग्यहीन ।।

अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं
सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति ।
जीवत्यनाथोऽपि वने विसर्जितः
कृत प्रयत्नोऽपिगृहे न जीवति।।

शब्दार्थ :—अरक्षितं = जिसकी कोई रक्षा नहीं करता है, तिष्ठति = रहता है , दैवरक्षितं = भाग्य की रक्षा करने से, सुरक्षितं = जो वहुत ही सुरक्षित है, दैवहतं = भाग्य से मारा होने पर, विनश्यति = नष्ट हो जाता है, जीवति = जीता है, अनाथोऽपि = अनाथ होने पर भी, वने = वन में, विसर्जितः = छोड़ देने पर, कृत प्रयत्नोऽपि = किए हुए प्रयत्न पर भी, गृहे =घर पर, न =नहीं, जीवति=जीता है ।

भावार्थ :– जिस की रक्षा करने वाला कोई न हो किन्तु यदि भाग्य उसकी रक्षा करता है तो वह जीवित रहता है। किन्तु जो बहुत सुरक्षित हो किन्तु भाग्य उसकी रक्षा न करें तो वह नष्ट हो जायेगा, भाग्य के रक्षा करने अर्थात् अनुकूल होने पर वन में छोड़ दिया गया व्यक्ति भी सुरक्षित रहता है किन्तु यदि भाग्य रक्षा न करें अर्थात् अनुकूल न हो तो वह घर में रहते हुए भी जीवित नहीं रह सकता है ।

(191)

।। पुण्य क्या नहीं कर देता ।।

निमग्नस्य पयोराशौ पर्वतात् पतितस्य च।
तक्षकेणापि दंष्टस्य त्वायुर्मर्माणि रक्षति।।

शब्दार्थ :–निमग्नस्य = डूबे हुए, पयोराशौ = जल (समुद्र में) पर्वतात् = पर्वत पर से, पतितस्य = गिरे हुए का, च = और, तक्षकेणाऽपि = तक्षक के द्वारा भी,, दंष्टस्य = काटे हुए की , तु = निश्चित ही , आयु = आयुशेष होने से, मर्माणि = प्राणों को, रक्षति = रखता है ।

भावार्थ :–अगाध जल में डूबे हुए की , पर्वत से गिर हुए की , और सांप के काटे हुए की , पूर्व जन्म के पुण्यबल या आयु बल से ही रक्षा होती है ।

(192)

।। बुरा छोड़ो अच्छा करो ।।

भवतीष्टं सत्क्रिययाऽनिष्टं तद्विपरीतया ।
शास्त्रतः सदसद् ज्ञात्वा त्यक्त्वाऽसत् सत्समाचरेत् ।।

शब्दार्थ :—भवति = होता है, ईष्टं = अच्छा, सत्क्रियया = अच्छे कर्मो से, अनिष्टं = बुरा, तद् = उसके, विपरीतया = विपरीत कार्यो से, शास्त्रतः = शास्त्र से, सद् = सही , असद् = गलत, ज्ञात्वा = जानकर, त्यक्त्वा = छोड़कर असत् = गलत, सत् = सही, समाचरेत् = आचरण करना चाहिए ।

भावार्थ :—अच्छे कामों से अच्छा, और बुरे कामों से बुरा फल मिलता है, इसलिए शास्त्र द्वारा अच्छे और बुरे का ज्ञान प्राप्त करके बुरे कामों को त्याग दो और अच्छे काम करो ।

(193)

।। पुण्यवानी कमाएं ।।

या साधूंश्च खलान् करोति विदुषो मूर्खान्हितान्वेषिणः,
प्रत्यक्षं कुरुते परोक्षममृतं हालाहलं तत् क्षणात् ।
तामाराधय सत्क्रियां भगवतीं भोक्तुं फलं वाच्छितं,
हे साधो व्यसनैर्गुणेषु विपुलेष्वास्थां वृथा मा कृथाः।।

शब्दार्थ :—या = जो, साधूंश्च = साधु (सज्जन) , खलान् = दुष्टों को, करोति = करती है, विदुषो = विद्वान्, मूर्खान् = मूर्खों को, हितान् = हित चिन्तक, द्वेषिणः = शत्रुओं को, प्रत्यक्षं = प्रकट, कुरुते = करता है, परोक्षम् = गुप्त को, अमृतं = अमृत, हालाहलं = विष को, तत्क्षणात् = उसी समय, तामाराधय = उसकी आराधना करो, सत्क्रियां = अच्छी क्रिया रूपी, भगवतीं = भगवती को, भोक्तुं = भोग करने के लिए, फलं = फल को, वाच्छितं = चाहते हो तो, हे साधो = हे सज्जनों, व्यसनैः = व्यसनों में, गुणेषु = गुणों में, विपुलेषु =बहुत में, आस्थां = चाह, मा = मत, कृथाः = करो।

भावार्थ :—हे सज्जनों ! अगर आप मनोवांछित फल चाहते हो तो आप और गुणों के संग्रह करने में कष्ट और हठ से वृथा परिश्रम न करके कवेल सत् क्रिया रूपी भवगती की आराधना कीजिए अर्थात् पुण्यशाली कर्म करें, क्योंकि पुण्यशाली कर्म दुष्टों को सज्जन, मूर्खों को पंडित, शत्रुओं को मित्र, गुप्त विषयों को प्रकट और हलाहल विष को तत्काल अमृत कर देते है ।

(194)

।। काम करने से पहले सोचो ।।

गुणवदगुणवद् वा कुर्वता कार्यमादौ
परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन ।
अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्ते :
भवति हृदय दाही शल्यतुल्यो विपाकः।।

शब्दार्थ :—गुणवद् = अच्छा है, अगुणवद् = बुरा है , वा = अथवा, कुर्वता = करते हुए, कार्यम् = कार्य को, आदौ = आदि में, परिणतिः = परिणाम, अवधार्या = निश्चित करना चाहिए, यत्नतः = यत्न से, पंडितेन = बुद्दिमान् के द्वारा, अतिरभस—कृतानां = अतिशीघ्रता से किए हुए, कर्मणां = कार्यों का, आविपत्तेः = मृत्यु पर्यन्त, भवति = होता है, हृदयदाही = हृदय को जलाने वाला, शल्यतुल्यो = कांटे के समान, विपाक = (कार्य का) परिणाम ।

भावार्थ :—कोई काम कैसा ही अच्छा या बुरा क्यों न हो, काम करने वाले बुद्दिमान् को पहले उसके परिणाम का विचार करके तब काम में हाथ लगाना चाहिए, क्योंकि बिना विचारे अति शीघ्रता से किये हुए काम का फल, मरणकाल तक हृदय को जलाता और कांटे की तरह खटकता है ।

(195)

।। सलाह किसकी लेना ।।

सुहृद्भिराप्तैरसकृद्विचारितम् ,
स्वय च बुद्ध्या प्रविचारिताश्रयम् ।
करोति कार्यं खलु यः स बुद्धिमान् ,
स एक लक्ष्म्याः यशसा च भाजनम् ।।

शब्दार्थ :—सुहृद्भिः = मित्रो से, आप्तैः = योग्य पुरूषों से , असकृत् = अनेक बार, विचारितम् = विचारा हुआ, स्वय च = और स्वयं, बुद्ध्या = बुद्धि से, प्रविचारित = विशेष रूप से विचारित, आश्रयम् = आश्रय, करोति = करता है, कार्यं = कार्य, खलु = निश्चित, यः = जो, सः = वह, बुद्धिमान् = पंडित है, स एक = वह एक ही, लक्ष्म्याः = लक्ष्मी का, यशसां च = और यश का, भाजनम् = पात्र (योग्यतावाला) है ।

भावार्थ :—जो मित्र और आप्त पुरूषों से सलाह लेकर अपनी बुद्धि से विचार कर काम करता है वह लक्ष्मी और यश का पात्र होता है ।

(196)

।। जहाँ-जहाँ चला कर्म, साया साथ आया ।।

आकाशमुत्पततु गच्छतु वा दिगन्तम् ।
अम्भोनिधिर्विशतु तिष्ठतु वा यथेच्छम् ।
जन्मान्तरार्जित शुभाशुभकृन्नराणाम् ।
छायेव न त्यजति कर्मफलानुबन्धः ।।

शब्दार्थ :—आकाशम् = आसमान में, उत्पततु = उड़ जाओ , गच्छतु वा = अथवा जाओ, दिगन्तम् = दिशाओं के अन्त तक, अम्भोनिधिं = समुद्र

में, विशतु = घुस जाओ, तिष्ठतु वा = अथवा रहो, यथेच्छम् = जहाँ इच्छा हो, जन्मान्तरार्जित–शुभा–शुभ–कृत्–, नराणां = अन्य जन्म में किये हुए अच्छे बुरे कर्म मनुष्यों के, छायेव = छाया के समान, न = नहीं, त्यजति = छोड़ता है, कर्म–फला– नुबन्धः = कर्म फलों का बन्धन, ।

भावार्थ :–चाहे आकाश में जाओ, चाहे दिशाओं के छोर तक जाओ, चाहे समुद्र में जाओ (घुसो) अथवा मन आये वहां जाओ, और रहो, किन्तु जन्म जन्मान्तर के किये कर्म छाया की तरह पीछा नहीं छोड़ते हैं ।

(197)

।। धन के हिस्सेदार।।

चत्वारो धन दायादाः धर्माग्निनृपतस्कराः।
ज्येष्ठस्य त्वपमानेन त्रयो कुप्यन्ति बान्धवाः।।

शब्दार्थ :–चत्वारो = चार, धन = सम्पत्ति (के) दायादाः = हिस्सेदार (होते हैं), धर्म– अग्नि–नृप–तस्कराः = धर्म–अग्नि (आग) –राजा और चोर, ज्येष्ठस्य = जेठे (बड़े) अर्थात् धर्म का, तु = निश्चित ही , अपमानेन = अपमान करने से, त्रयो = तीन, कुप्यन्ति = कुपित हो जाते हैं, बान्धवाः =भाईजन।

भावार्थ :–धन सम्पत्ति के चार हिस्सेदार होते हैं , धर्म, अग्नि, राजा, और चोर यदि इसमें बड़े (भाई) धर्म का कोई अपमान करता है तो बाकी तीन छोटे भाई नाराज हो जाते है । इसलिए धन सम्पत्ति को यदि आग, राजा, और चोर से बचाना हो तो धर्म की रक्षा अवश्य करों ।

(198)

।। बिना भोगे कर्म नहीं कटता।।

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ।।

शब्दार्थ :–अवश्यमेव = निश्चित ही , भोक्तव्यं = भोगना पड़ेगा, कृतं = किये हुए, कर्म = कर्म के, शुभाशुभम् = अच्छाई बुराई को, नाभुक्तं = नहीं बिना भोगे , क्षीयते = क्षीण होता है, कर्म = पूर्व के कर्म फल, कल्प–कोटि–शतै–रपि = कल्पों के करोड़ो सौ बीत जाय तब भी ।

भावार्थ :– अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मों का फल अवश्य भोगना होता है । बिना भोगे कर्म का फल सौ करोड़ कल्प में भी क्षय नहीं होता है ।

(199)

।। पुण्यवानी का खेल।।

भीमं वनं भवति तस्य पुरं प्रधानं ।
सर्वो जनः सुजनतामुपयाति तस्य।
कृत्स्ना च भूर्भवति सन्निधिरत्नपूर्णा ।
यस्यास्ति पूर्वसुकृतं विपुलं नरस्य।।

शब्दार्थ :–भीमं = भयानक, वनं = जंगल , भवति = होता है, तस्य = उसका, पुरं = नगर, प्रधानं = प्रमुख , सर्वो = सभी, जनः = लोग, सुजनताम् = सज्जनता को, उपयाति = प्राप्त हो जाते हैं, तस्य = उस के लिए, कृत्स्ना = सम्पूर्ण, च = और, भू = धरती, भवति = होती हैं, सन्निधिरत्नपूर्णा = अच्छे रत्नों से पूर्ण, यस्य = जिसके, अस्ति = है, पूर्वसुकृतं = पहले के अच्छे कर्म, विपुलं = पर्याप्त, नरस्य = मनुष्य का ।

उसके लिए भयानक वन नगर हो जाता है, सभी मनुष्य उसके हित चिन्तक मित्र हो जाते हैं और सारी धरती उसके लिए रत्नपूर्ण हो जाती हैं ।

(200)

।। क्या अच्छा है ?।।

को लाभो गुण संगमः किमसुखं प्राज्ञेतरैः सैंतिः ।
का हानिः समयच्युतिर्निपुणता का धर्मतत्वे रतिः ।
कः शूरो विजितेन्द्रियः प्रियतमा कानुव्रता किं धनं।
विद्या किं सुखमप्रवासगमनं राज्यं किमाज्ञाचलम्।।

शब्दार्थ :—कः = क्या, लाभो = लाभ है , गुण संगमः = गुणियों का संग, किमसुखं = क्या दुख है, प्राज्ञेतरैः = मूर्खो के साथ, सैंतिः = संग , का = क्या, हानिः = नुकसान है, समयच्युतिः = समय पर चूकना, निपुणता = निपुणता, का = क्या, धर्मतत्वे = धर्म के तत्व में, रतिः = लगाव, कः = कौन, शूरो = वीर है, विजितेन्द्रिय = इन्द्रियों को जीतने वाला, प्रियतमा = पत्नी , का = कौन है, अनुव्रता = जो अनुकूल और पतिव्रता है, किं = क्या, धनं = धन है, विद्या = शिक्षा, किं = क्या, सुखं = सुख है, अप्रवासगमनं = परदेश नहीं रहना, राज्यं = राज्य, किं = क्या है, आज्ञाचलम् = अपनी आज्ञा (आदेश) का चलना ।

भावार्थ :—लोभ क्या है ? गुणियों की संगति, दुःख क्या है ? मूर्खो का संसर्ग, हानि क्या है ? समय पर चूकना । निपुणता क्या है ? धर्मानुराग । शूरवीर कौन है ? इन्द्रिय विजयी । स्त्री कैसी अच्छी है ? जो अनुकूल और पतिव्रता है । धन क्या हैं ? विद्या । सुख क्या है ? प्रवास में न रहना अर्थात् परिवार के साथ रहना । राज्य क्या है ? अपनी आज्ञा का चलना ।

।। विद्या, बोध, लाभ, जगत–जेता, कौन ?।।

विद्या हि का ब्रह्मगति प्रदात्री,
बोधो हि को यस्तु विमुक्ति हेतुः।
को लाभ आत्मावगमोहि यो वै,
जितं जगत्केन मनो हि येन ।।

शब्दार्थ :–विद्या ही का = विद्या निश्चित रूप से क्या है, ब्रह्मगतिप्रदात्री = (जो) ब्रह्म (आत्मा) गति (ज्ञान) को देने वाली हो, बोधो हि को = बोध निश्चित रूप से क्या है, यस्तु = जो निश्चित रूप से, विमुक्ति हेतु = मुक्ति का हेतु है, को लाभः = क्या लाभ है आत्मावगमो = आत्मा का बोध ,हि=निश्चय ही, यो=जो, वै= निश्चय ही, जितं = जीत लिया है, जगत् = संसार. को, केन = किसके द्वारा, मनोहि = मन को, येन = जिसके द्वारा (जीत लिया गया) है।

भावार्थ :–विद्या क्या है ? ब्रह्मगति देने वाली, । बोध क्या है ? विमुक्ति का जो कारण (साधन) है । लाभ क्या है ? आत्मा का ज्ञान या अपने स्वरूप को पहचानना । जगत् को जीतने वाला कौन हैं ? जिसने अपने मन को जीत लिया है ।

(202)

।। चार बातें कौन सी दुर्लभ ?।।

किं दुर्लभः सद् गुरुरस्ति लोके ,
सत् संगतिः ब्रह्मविचारणा च ।
त्यागो हि सर्वस्य शिवात्मबोधः ,
को दुर्जयः सर्वजनैः मनोजः ।।

शब्दार्थ :–किं = क्या, दुर्लभः = दुर्लभ है , सद्गुरूः = अच्छा गुरू, अस्ति = है, लोके = संसार में, सत् संगति = अच्छी संगति क्या है , ब्रह्मविचारणा = ब्रह्म (आत्म) भाव की विचारणा, च = और, त्यागो = त्याग, हि = क्या है, सर्वस्य = सभी का, शिवात्मबोधः = कल्याण कारी आत्म तत्व का ज्ञान, को = क्या, दुर्जयः = दुर्जय है, सर्वजनैः = सभी के द्वारा, मनोजः = कामदेव ।

भावार्थ :– संसार में दुर्लभ क्या है ? अच्छा गुरू। सत्संग क्या है ? ब्रह्म (आत्मभाव) की विचारणा । सब कुछ त्याग कौन कर सकता है ? जिसे कल्याण कारी आत्म तत्व का ज्ञान है । दुर्जय कौन हैं ? कामदेव ।

(203)

।। पृथ्वी किससे शोभायमान् ।।

अप्रियवचन दरिद्रैः प्रियवचनाढ्यैः स्वदारपरितुष्टैः ।
परपरिवाद निवृत्तैः क्वचित्–क्वचित् मण्डिता वसुधा ।।

शब्दार्थ :–अप्रिय–वचन–दरिद्रैः = जो अप्रिय वचनो के दरिद्री हैं, प्रियवचनाढ्यैः = प्रिय वचनों के धनी हैं , स्वदारपरितुष्टैः = अपनी स्त्रीं से सन्तुष्ट हैं, परपरिवादनिवृत्तैः = दूसरे की निन्दा करने से निवृत्त (रहित) हैं, क्वचित्–क्वचित् = कहीं कहीं, मण्डिता = सुशोभित है , वसुधा = धरतीं ।

भावार्थ :–जो अप्रिय वचनों के दरिद्री हैं अर्थात् जो अप्रिय वचन कभी नहीं बोलते हैं तथा प्रिय वचनों के धनी हैं और अपनी ही स्त्री से सन्तुष्ट रहते हैं तथा परायी निन्दा से बचते हैं, ऐसे पुरूषों से कहीं कहीं की ही पृथिवी शोभायमान है ।

।।समर्थ, व्यवसायी, विद्वान् प्रियवक्ता की विशेषता।।

कोऽतिभारः समर्थानां किं दूरं व्यवसायिनाम् ।
को विदेशः सविद्यानां कः परः प्रियवादिनाम्।।

शब्दार्थ :– कोऽतिभारः=क्या है ? बड़ाभार, समर्थानां= समर्थों के लिए , कि = क्या है (अर्थात् कुछ भी नहीं), दूरं = दूर (क्या है), व्यवसायिनाम् = व्यवसाय करने वालों के लिए, को = क्या , विदेशः = विदेश है, सविधानां = विद्वानों के लिए, कः = कौन, परः = पराया है, प्रियवादिनाम् = प्रिय बोलने वालों के लिए ।

भावार्थ :–समर्थ पुरूषों के लिए बड़ाभार क्या है ? व्यवसायियों के लिए कौन सी जगह दूर है ? विद्वानों के लिए विदेश क्या है ? प्रिय बोलने वालों के लिए पराया कौन है ? कोई नहीं। अर्थात् समर्थ के लिए कोई भार नहीं, व्यवसायियों के लिए कोई जगह दूर नहीं, विद्वानों के लिए कोई जगह विदेश नहीं, प्रिय बोलने वाले के लिए सब अपने हैं।

(205)

।। घाव जो कभी नहीं भरता।।

रोहते शायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम् ।
वाचा दुरुक्तं वीभत्सं नापि रोहति वाक्क्षतम्।।

शब्दार्थ :–रोहते = ठीक हो जाता है, शायकैः = वाण से , विद्धं = मारा हुआ, वनं=जंगल, परशुना= कुल्हाड़ी से, हतम् = काटा हुआ वाचा

= वाणी से, दुरूक्तं = उत्पन्न, वीभत्सं = घाव, नापि = नहीं रोहति =ठीक होता है, वाक्क्षतम् = वाणी से किया हुआ नुकसान ।

भावार्थ :—बाण का घाव भर जाता है, कुल्हाड़ी से काटा वृक्ष फिर हरा हो जाता है पर कठोर वाणी से हुआ घाव कभी नहीं भरता है ।

(206)

।। दुःख में भी धीर रहने वाला ।।

कदर्थितस्यापि हि धैर्यवृत्तेः
न शक्यते धैर्यगुणः प्रमार्ष्टुम्।
अधोमुखस्यापि कृतस्य बह्नेः
नाधः शिरवा याति कदाचिदेव।।

शब्दार्थ :—कदर्थितस्यापि = दुःखी व्यक्ति के, हि = निश्चित , धैर्यवृत्तेः = धीरता के स्वभाव को, न = नहीं , शक्यते= सम्भव है, धैर्यगुणः = धीरता के गुणों को , प्रमार्ष्टुम् = मिटाना, अधोमुखस्यापि = नीचे मुख, कृतस्य = करने पर भी, वह्नेः = अग्नि की, नाधः = नीचे नहीं, शिरवा = लपट, याति =जाती है, कदाचिदेव = कभी भी ।

भावार्थ :—धैर्यवान् पुरूष घोर दुःख पड़ने पर भी अपने धैर्य को नहीं छोड़ता, क्योंकि प्रज्वलित अग्नि को उल्टी करने पर भी उसकी शिखा (लपट) उपर ही रहती है नीचे की ओर नहीं ।

(207)

।। सबसे बड़ा बहादुर, समदर्शी कौन ?।।

शूरान् महान् शूरतमोस्ति को वा,
मनोज बाणैः व्यथितो न यस्तु ।
प्राज्ञोऽतिधीरश्च शमोस्ति को वा ,
प्राप्तोन मोहं ललना कटाक्षैः ।।

श'ब्दार्थ :–शूरान् = शूर से, महान् = बड़ा , शूरतमो = बलवान्, अस्ति = है, को वा = कौन , मनोजबाणैः = कामदेव के बाणों से , व्यथितो = दुःखी , न = नहीं, यस्तु = जो व्यक्ति, प्राज्ञोऽतिधीरश्च = विद्वान् (बुद्धिमान्),और अत्यन्त गम्भीर, शमो = शान्त, अस्ति = है, को वा = वगैन, प्राप्तो न = नहीं प्राप्त हुआ, मोहं = मोह को, ललना कटाक्षैः = स्त्री के कटाक्ष से।

भावार्थ :– संसार मे सबसे बड़ा बहादुर कौन है ? जो काम वाणों से पीड़ित न हो । प्राज्ञ धीर और समदर्शी कौन है ? जिसे स्त्री के कटाक्ष से मोह न हो ।

(208)

।। मनुष्य का भयंकर शत्रु क्रोध।।

क्रोधो हि शत्रुः प्रथमो नराणां
देहस्थितो देहविनाशनाय ।
यथा स्थितः काष्ठगतो हि वह्निः
स एव वह्निर्दहते च काष्ठम्।।

शब्दार्थ :–क्रोधो = क्रोध, हि = निश्चित , शत्रुः = दुश्मन है, प्रथमो = सबसे पहला, नराणां = मनुष्यों का, देहस्थितो = देह मे स्थित , देह

विनाशनाय = देह का नाश करने के लिए, यथा = जैसे, स्थितः = रहने वाला, काष्ठगतो = काष्ठ में , हि = निश्चित, वह्निः = अग्नि, स एव = वही ही, वह्निः = अग्नि, दहते = जलाती है, च = और, काष्ठम् = काष्ठ को, ।

भावार्थ :—मनुष्य के शरीर में छिपा हुआ क्रोध उसका सबसे पहला शत्रु है वह शरीर में आश्रय पा कर भी शरीर को ही नाश करता है । जिस प्रकार अग्नि काष्ठ में रहती है किन्तु काष्ठ को जलाती भी वही है ।

(209)

।। धर्मज्ञान के लिए अपात्र कौन।।

मत्तः प्रमत्तश्चोन्मत्तः श्रान्तः कुद्धो बुभुक्षितः ।
लुब्धो भीरू त्वरायुक्तः कामुकश्च न धर्मवित्।।

शब्दार्थ :—मत्तः = मतवाला, प्रमत्तः = पागल , उन्मत्त = उन्मादी, श्रान्तः = थका हुआ, कुद्धो = क्रोधयुक्त, बुभुक्षितः = भूखा , लुब्धः = लोभी,, भीरू = डरपोक, त्वरायुक्तः = जल्दीबाज, कामुकश्च = कामुक, च = और, न = नहीं, धर्मवित् = (धर्म करने वाले होते हैं) ।

भावार्थ :—मत्त, प्रमत्त, उन्मत्त, थका हुआ, क्रोधी, भूखा, लोभी, डरपोक, जल्दबाज, कामातुर, को धर्म ज्ञान नहीं रहता है ।

(210)

।। पारिवारिक शत्रु कौन है।।

ऋणकर्ता पिताशत्रुः माता च व्यभिचारिणी ।
भार्या रूपवती शत्रुः पुत्रःशत्रुरपण्डितः ।।

शब्दार्थ :—ऋणकर्ता = कर्ज करने वाला, पिता = जनक , शत्रुः = शत्रु होता है, माता च = और माता, व्यभिचारिणी = व्यभिचार करने वाली (चरित्रहीन), भार्या=स्त्री ,रूपवतीं = रूपवती हो तो, शत्रु = शत्रु है, पुत्रः = बेटा, शत्रुः =शत्रु है, अपण्डितः = यदि मूर्ख है।

भावार्थ :—ऋण करने वाला पिता, व्यभि चारिणी माता, रूपवती पत्नि तथा मूर्ख पुत्र शत्रु के समान होते हैं।

(211)

।। किसकी शोभाः किससे।।

पंकैर्बिना सरो भाति सभा खलजनैर्बिना ।
कटुवर्णैर्बिना काव्यं मानसं विषयैर्बिना।।

शब्दार्थ :—पंकैः = कीचड़ के, बिना = अभाव में , सरो = तालाब, भाति = सुशोभित होता है, सभा = परिषद्, खलजनैः = दुष्टजनों के, बिना = अभाव में, कटुवर्णैः = कटु अक्षर के, बिना = अभाव में काव्यं = साहित्य, मानसं = मन, विषयैर्बिना = विषय के बिना ।

भावार्थ :—कीचड़ रहित तालाब की शोभा होती है, दुर्जन रहित सभा की शोभा होती है, कठोर वर्ण रहित काव्य की शोभा है और विषय वासना रहित मन की शोभा होती है ।

(212)

।। शूरवीर की ताकत।।

एकेनापि हि शूरेण पादाक्रान्तं महीतलम् ।
क्रियते भास्करेणैव परिस्फुरित तेजसा ।।

शब्दार्थ :—एकेनापि = एक ही, हि = निश्चित , शूरेण = शूरवीर के द्वारा, पादाक्रान्तां = पैर से दबायी हुयी , महीतलम् = धरती, क्रियते = कर ली जाती है , भास्करेणैव = सूर्य के द्वारा, परिस्फुरिततेजसा = चमकते हुए तेज से, ।

भावार्थ :– जिस तरह एक ही तेजस्वी सूर्य सारे जगत् को प्रकाशित करता है । उसी तरह एक ही शूर वीर सारी पृथ्वी पांव तले दबाकर अपने वश में कर लेता है।

(213)

।। सबसे बडी शक्ति शील की।।

वह्निस्तस्य जलायते जलनिधिः कुल्यायते तत्क्षणात्,
मेरूः स्वल्पशिलायते मृगपतिः सद्यः कुरंगायते ।
व्यालो माल्यगुणायते विषरपः पीयूषवर्षायते,
यस्यांगेऽखिललोक वल्लभतमं शीलं समुन्मीलति ।।

शब्दार्थ :—वह्निः = अग्नि, तस्य = उसके लिए , जलायते = जल के समान हो जाती है , जलनिधिः = समुद्र , कुल्यायते = छोटी नदी के समान हो जाता है, तत्क्षणात् = उसी समय , मेरूः = सुमेरू जैसा महान् पर्वत, स्वल्पशिलायते = छोटे से पत्थर के समान हो जाता है, मृगपतिः = सिंह, सद्यः = तत्काल, कुरंगायते = मृग के समान हो जाता है, व्यालो = सर्प, माल्यगुणायते = माला के गुणों को धारण कर लेता है, विषरपः = विषयुक्त जल, पीयूषवर्षायते = अमृत की वर्षा के समान हो जाता है, यस्यांगे = जिसके अंगो में, अखिल– लोक–वल्लभतमं = सम्पूर्ण संसार को अत्यन्त प्रिय, शीलं = शील (चरित्र) समुन्मीलति = रहता है ।

भावार्थ :—जिस पुरूष में समस्त जगत् को मोहने वाला शील है उसके लिए अग्नि जल सी जान पड़ती है, समुद्र छोटी नदी सा जान पड़ता है, सुमेरू पर्वत छोटी सी शिला (पत्थर) जैसा जान पड़ता हैं, सिंह शीघ्र ही उसके आगे हिरण सा हो जाता है, सर्प उसके लिए फूलों की माला सा बन जाता है और विष अमृत के गुणों वाला हो जाता है ।

(214)

।। वचन प्राणों से भी प्यारे।।

लज्जा गुणौघजननीं जननीमिव स्वाम्,
अत्यन्तशुद्धहृदयामनुवर्तमानाम् ।
तेजस्विनः सुखमसूनपि संत्यजन्ति,
सत्यव्रतव्यसनिनो न पुनः प्रतिज्ञाम् ।।

शब्दार्थ :— लज्जा=संकोच (शर्म), गुणौघ = गुण समूह की, जननी = माता को, जननीमिव=माता के समान, स्वाम्=अपनी, अत्यन्त—शुद्ध—हृदया—मनुवर्तमानां = अत्यन्त—शुद्ध हृदय से आचरण करने वाले , तेजस्विनः = तेजस्वी के, सुखम्—असूनपि = सुख और प्राण को भी, संत्यजन्ति=त्याग देते हैं, सत्य—व्रत—व्यसनिनो=सत्यव्रत के प्रति आसक्ति वाले, न =नहीं, पुनः = अपनी, प्रतिज्ञाम् = प्रतिज्ञा को।

भावार्थ :— सत्यव्रत वाला तेजस्वी पुरूष अपनी प्रतिज्ञा भंग करने की अपेक्षा अपना प्राण त्याग करना अच्छा समझता है, क्योंकि प्रतिज्ञा, लज्जा प्रभृति गुणों के समूह की जननी है, उसकी रक्षा अपनी जननी की तरह करनी चाहिए।

(2 1 5)

।। सत्यप्रतिज्ञ बड़ा, असत्यप्रतिज्ञा निम्न।।

हस्तिदन्तसमानं हि निःसृतं महतां वचः ।
कूर्मग्रीवेव नीचानां वाचः याति प्रयाति च ।।

शब्दार्थ :—हस्तिदन्त—समानं = हाथी के दाँत के समान, हि = निश्चित, निःसृतं=निकलता है , महतां=महान् पुरूषों के, वचः = वचन, कूर्मग्रीवेव=कछुवे के गर्दन के समान , नीचानां =नीच पुरूषो का, वाचः = वचन, याति=निकलता है, प्रयाति=वापस अंदर जाता है ।

भावार्थ :— बड़ों के वाक्य हाथी के दाँत के समान होते हैं यानि निकले तो निकले, निकल कर फिर भीतर नहीं जाते, परन्तु नीचों के वाक्य कछुए की गर्दन के समान होते हैं जो कभी भीतर जाते हैं कभी बाहर आते हैं।

(2 1 6)

।। विद्वान् सत्य प्रतिज्ञ होते हैं।।

विदुषां वदनात् वाचः सहसा यान्ति नो बहिः ।
याताश्चेन्न पराञ्चन्ति द्विरदानां रदा इव ।।

शब्दार्थ :—विदुषां = विद्वानों के, वदनात् = मुख से , वाचः = बात सहसा = अचानक, यान्ति = निकलते हैं, नो = नहीं , बहिः = बाहर, याताः = यदि निकल गये, चेत् =तो, न = नहीं, पराञ्चन्ति = वापस होते हैं, द्विरदानां = हाथियों के दांत, इव = के समान ।

भावार्थ :—विद्वानों के मुंह से सहसा कोई बात नहीं निकलती है और यदि निकली तो हाथी के दांतों की तरह निकल कर भीतर नहीं जाती है ।

स्थवीर प्रमुख श्री ज्ञान मुनि जी म.सा. द्वारा लेखन, संकलन और सम्पादन पुस्तकें

1 जीवन के सत्य
2 मुक्त दीप
3 मुक्त बोध
4 अष्टाचार्य एक झलक
5 अष्टाचार्य गौरव गंगा
6 आत्मन् की दिशा में
7 जिन्दगी के बदलते रूप
8 गुरू वन्दना
9 नाना में है चमत्कार
10 साधुमार्ग और उसकी परम्परा
11 नानेश दृष्टान्त सुधा
12 ज्योति से ज्योति जले
13 भगवती सूत्र
14 अन्तगड़दशाओं
15 परदे के उस पार
16 समीक्षण धारा
17 ऐसे जीए
18 अन्तर के प्रतिबिम्ब
19 देर है पर अंधेर नहीं
20 संस्कारित नारी
21 जीवन सजाएँ
22 समस्याएँ अनेक समाधान एक
23 अन्तर की आवाज
24 सूक्त चयन
25 समता वाणी
26 आदर्श दम्पती
27 सृष्टि नहीं दृष्टि बदलें
28 अन्तर के स्वर
29 अंगड़ाई
30 सम्वत्सरी कैसे मनाएँ
31 महिलायें जागृत हो
32 एके साधे सब सधे
33 आचार्य नानेश जीवित है
34 सूक्ति सुधा
35 मैं ना जानूँ कौन पराया
36 जीने का राज
37 सूक्ति माला